# मुक्ति संग्राम

वर्ष 1 • अंक 4 • दिसंबर 2023 • मासिक • क़ीमत 10 रुपए • प्रकाशन स्थान – ज़िला लुधियाणा (पंजाब)


# उत्तरकाशी सुरंग हादसा

## मोदी सरकार की प्रकृति विरोधी नीतियों का नतीजा

**संपादकीय**

12 नवंबर 2023 को उत्तराखंड के उत्तरकाशी ज़िले के पहाड़ी क्षेत्र में बन रही एक सुरंग के अचानक गिर जाने से 41 मज़दूर मलबे में फँस गए। दुर्घटना के 17 दिन बाद, विदेशी सुरंग विशेषज्ञों की मदद से मज़दूरों को वहाँ से निकाला गया। चाँद तक पहुँचने की बातें करने वाली भारत सरकार ने इस राहत कार्य के ज़रिए अपनी मशहूरी करने के लिए अपना पूरा ज़ोर लगाया। सरकार पक्षीय मीडिया दिन-रात मोदी सरकार के मज़दूरों के प्रति झूठी फ़िक्र को बढ़ा-चढ़ाकर प्रचार करता रहा। इस सारे मामले में जो असल सवाल बनता है, वह है कि इस पहाड़ी क्षेत्र में मज़दूरों, स्थानीय जनता को ख़तरे में डालकर, इस सुरंग के निर्माण जैसे क़ुदरत और मनुष्य विरोधी प्रोजेक्ट को मंजूरी ही क्यों मिली और क्या इस सड़क की वास्तव में कोई ज़रूरत भी थी? इस सुरंग का ठेका जिस कंपनी को मिला है, उसका रिकॉर्ड ऐसे मामलों में पहले से ही बहुत ख़राब है। इस सुरंग को नवयुग इंजीनियरिंग नाम की एक कंपनी बना रही थी। 3 महीने पहले ही महाराष्ट्र के ठाणे इलाक़े में, मुंबई-समृद्धि सड़क योजना के तहत एक पुल के निर्माण के दौरान क्रेन गिरने से 20 मज़दूर मारे गए थे। इस प्रोजेक्ट का ठेका भी इसी नवयुग इंजीनियरिंग कंपनी को ही मिला था। इस दुर्घटना के बाद भी कंपनी से अगले प्रोजेक्ट के ठेके वापस नहीं लिए गए और केवल छोटे-मोटे स्थानीय ठेकेदारों पर ही एफ़.आई.आर. दर्ज की गईं। यह सुरंग सिलकीरा-बारकोट को आपस में जोड़ती है और भारत सरकार की चारधाम सड़क योजना का

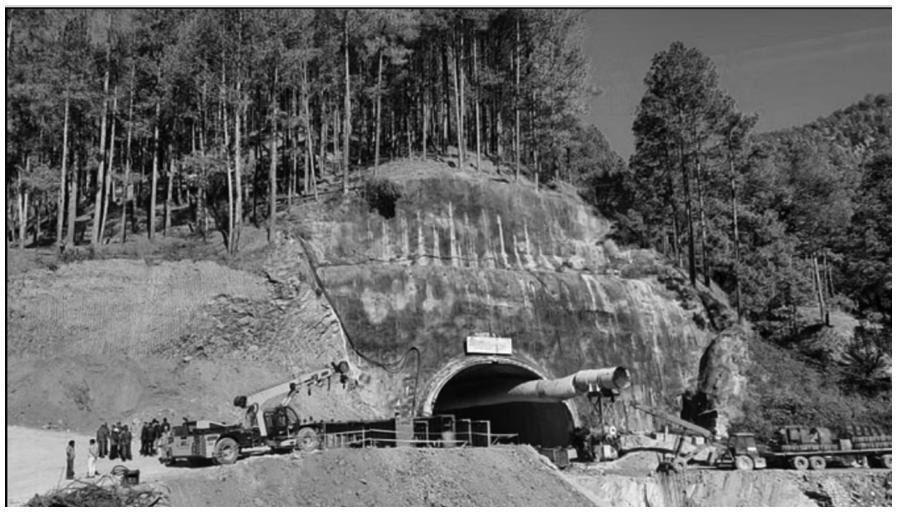

हिस्सा है। भारत सरकार इस योजना के तहत उत्तराखंड में स्थित चार तीर्थ स्थानों को सड़क के ज़रिए जोड़कर राजनीतिक लाभ उठाना चाहती है। इस योजना की शुरुआत से ही स्थानीय जनता और भू-विज्ञानी इसका विरोध कर रहे थे, लेकिन सरकार ने किसी की नहीं सुनी और सड़क निर्माण जारी रखा, जिसका नतीजा मलबे के नीचे फँसे 41 मज़दूरों को भुगतना पड़ा।

इस चार धाम सड़क प्रोजेक्ट का नींव-पत्थर ख़ुद मोदी ने 2016 में रखा था और अब इस सड़क का 75% से भी अधिक काम पूरा हो चुका है। सरकार की योजना उत्तराखंड के नाज़ुक पहाड़ी क्षेत्र में 889 किलोमीटर लंबी और कम-से-कम 10 मीटर चौड़ी सड़क बनाने की है, जो उत्तराखंड में स्थित चार प्रमुख तीर्थ स्थानों – बद्रीनाथ, केदारनाथ, यमुनोत्री और गंगोत्री को आपस में जोड़ेगी। इसके साथ ही यह सड़क चीन से सटे बॉर्डर को देहरादून और मेरठ स्थित फ़ौजी छावनियों से भी जुड़ेगी। पिछले काफ़ी समय से भारत और चीन के बीच चल रहे सरहदी तनाव के कारण भारत सरकार इस इलाक़े में चीन की गतिविधियों से डरी हुई है। यह सड़क हर मौसम में खुली रहेगी, जिससे इस क्षेत्र में सैलानी गतिविधियाँ बढ़ेंगी और सरकार को लाभ होगा। उत्तराखंड सरकार 2014 से ही उत्तराखंड का "देवभूमि" के तौर पर प्रचार को बढ़ावा देकर, यहाँ सैलानी आवाजाही बढ़ाने की कोशिश कर रही है। हर साल सैलानी आवाजाही बढ़ाने और पहाड़ी क्षेत्र में निर्माण कार्यों के कारण इस इलाक़े के क़ुदरती वातावरण के लिए गंभीर संकट पैदा हो रहे हैं। 2018 से ही वातावरण को बचाने के लिए काम कर रहे भू-विज्ञानी सरकार को इस प्रोजेक्ट के बारे में चेतावनी दे रहे हैं। पहाड़ी क्षेत्र में पेड़ों की कटाई, सुरंगों के निर्माण से यह पूरे हिमालय क्षेत्र के नाज़ुक वातावरण के लिए गंभीर ख़तरा पैदा करेगा। इसके संबंध में सर्वोच्च अदालत ने साल 2020 में एक 18 सदस्यीय जाँच कमेटी बनाई थी, जिसके सदस्य ज़्यादातर सरकारी अफ़सर थे और इस कमेटी में वैज्ञानिकों और स्थानीय लोगों की बात नहीं सुनी गई। सर्वोच्च अदालत ने 2020 में अपने ही सुनाए गए फ़ैसले को बदलते हुए, सड़कों को चौड़ा करने की हद 5.5 मीटर से बढ़ाकर 10 मीटर तक कर दी। इसकी वजह से 24 मीटर तक पहाड़ को काटने की ज़रूरत पड़ेगी, जिसके कारण यह इलाक़ा और अधिक अस्थिर हो जाएगा। इस योजना के कारण 900 हेक्टेयर जंगल काटा जाएगा। सरकार की अपनी हिदायतों के मुताबिक़, ऐसी किसी भी योजना के शुरू होने से पहले इसके वातावरण पर पड़ने वाले प्रभावों के बारे में एक अनुसंधान ज़रूर होना चाहिए, जो इस मामले में नहीं हुआ। भू-विज्ञानियों के मुताबिक़ जंगल काटे जाने के कारण इलाक़े में भू-क्षरण की समस्या भी पैदा होगी। पहाड़ों को विस्फोट और ड्रिल मशीनों से तोड़ने के कारण पैदा हुए मलबे के निपटारे का भी कोई प्रबंध नहीं किया गया है, जिसके कारण बारिश के मौसम में ज़मीन खिसकने के कारण बड़ी दुर्घटनाएँ हो सकती हैं। इन सब चेतावनियों के बावजूद भी निर्माण का काम जारी रखा गया। इस इलाक़े में विस्फोटक पदार्थ और भारी-भरक़म ड्रिल मशीनों से पैदा हुई कंपन ने पहले से कमज़ोर और अस्थिर पहाड़ को और अस्थिर बना दिया, जिससे सुरंग की छत गिर पड़ी।

अब तक सामने आई रिपोर्टों के मुताबिक़ इस सुरंग की खुदाई के दौरान ज़रूरी सुरक्षा हिदायतों का भी पालन नहीं किया गया। किसी भी 1.5 किलोमीटर से लंबी सुरंग के निर्माण के दौरान किसी दुर्घटना होने

(पन्ना 6 पर जारी)

# इस अंक में


- उत्तरकाशी सुरंग हादसा — मोदी सरकार की प्रकृति विरोधी नीतियों का नतीजा 1
- बदलते हालात 2
- मैकडॉनाल्ड्स के कर्मचारियों की दर्द-भरी कहानी 3
- नारायण मूर्ति का मज़दूर विरोधी बयान: पूँजीपतियों की मज़दूर विरोधी मानसिकता की अभिव्यक्ति 3
- बच्चों के शारीरिक शोषण के विरुद्ध चुप्पी तोड़ो! 4
- महाराष्ट्र की स्वास्थ्य व्यवस्था की पोल खोलती नांदेड़ अस्पताल में हुई मौतें 5
- बिना संगठन के क़ानूनी अधिकारों से भी वंचित मज़दूर 5
- भाजपा सरकार में पूँजीपतियों की ऐश, ना चुकाने योग्य क़र्ज़ में प्रतिदिन 100 करोड़ का इज़ाफ़ा 6
- औरत-मर्द की "बराबरी" वाली पूँजीवादी व्यवस्था में औरतों के साथ होता काम-आधारित भेदभाव 7
- मार्शल मशीन्स लिमिटेड के मज़दूरों का संघर्ष जारी 8
- सरकारी बैंकों का निजीकरण: भारत में अच्छे-सुरक्षित रोज़गार का सिकुड़ता दायरा 8
- केवल सामाजिक व्यवहार ही सच्चाई की कसौटी हो सकता है 9
- बेरोज़गारी पर पर्दा डालते सरकारी आँकड़े 10
- मक्सिम गोर्की का उपन्यास: 'वे तीन' 11
- चुनाव बांड योजना - राजनीतिक पार्टियों द्वारा मोटे चंदे डकारने का हथकंडा 12
- मेहनतकशों को राहत देने की बजाय, हथियारों और साम्राज्यवादी युद्धों को पहल दे रहा है अमेरिकी साम्राज्यवाद 13
- फ़िलिस्तीन के मुक्ति संघर्ष के समर्थन में पूरी दुनिया के लोग 15
- बंगलादेश में कपड़ा मज़दूरों की हड़ताल 16
- मनरेगा योजना को ख़त्म करके ग्रामीण मज़दूरों से नाममात्र का रोज़गार भी छीन रही है मोदी हुकूमत 16


# बदलते हालात

कुछ दिन पहले हम दोपहर के समय मज़दूरों के क्रांतिकारी अख़बार मुक्ति संग्राम का प्रचार करने के लिए प्रिया कालोनी मेहरबान (लुधियाणा) में गए थे। कारख़ानों में दोपहर के खाने की छुट्टी हो चुकी थी। हम उस रास्ते पर प्रचार कर रहे थे, जहाँ से मज़दूर खाना खाने के लिए गुज़रते हैं। मैं 7-8 साल पहले उसी रास्ते पर प्रचार कराता था, पर काफ़ी लंबे समय से मुझे दोबारा उस इलाक़े में प्रचार करने का मौक़ा नहीं मिला। अब जब मैंने वहाँ प्रचार किया, तो मुझे वहाँ पहले से काफ़ी बदलाव नज़र आया।

पहले उस सड़क पर हमें लगभग पुरुष ही नज़र आते थे और महिलाएँ इक्का-दुक्का ही नज़र आती थीं। हम मज़दूर संगठन के रूप में भी उस इलाक़े में प्रचार करते थे। बहुत से पावरलूम के कारख़ाने उस इलाक़े में मौजूद थे, जिनमें संगठन की अगुवाई में हड़तालें हुई थीं। यह इलाक़ा बाक़ी पावरलूम इलाक़ों से काफ़ी दूर होने के कारण हम यहाँ के मज़दूर साथियों की अलग से मीटिंग करते थे। इन मीटिंगों का सिलसिला कई साल तक चलता रहा। मुझे याद है कि हम उस समय मीटिंगों में इस बात पर बहुत ज़ोर देते थे कि सारे मज़दूर साथी अपने परिवारों को भी मीटिंगों में लाया करें, ताकि उनकी महिलाएँ भी जागरूक हों और उनको भी संगठन के महत्व का पता चले। पर कोई भी मज़दूर साथी कभी भी अपने परिवार को मीटिंगों में साथ लेकर नहीं आया था। उस समय मज़दूर अपनी पत्नियों को कमरे की चारदीवारी में ही रखते थे और महिलाओं का कारख़ानों में काम करना बहुत बुरा समझा जाता था।

पर अब जब हमने उस इलाक़े में प्रचार किया, तो बहसंख्या महिलाओं की थी। पुरुषों से कहीं ज़्यादा महिलाएँ कारख़ानों में वहाँ काम कर रही हैं। मुझे यह देखकर बहुत हैरानी हुई। हमें वहाँ संगठन का एक पुराना सदस्य भी मिला। मैंने उससे भी यह बात साझा की। उसने मुझे कहा कि पिछले कुछ समय से पुरुष मज़दूरों के संख्या घटती और महिलाओं की संख्या बढ़ती जा रही है, क्योंकि जो काम पुरुष 15 हज़ार में करते हैं, वही काम महिलाएँ 10 में करती हैं।

उस साथी की बात में काफ़ी हद तक सच्चाई थी। महिलाएँ सस्ते मज़दूरों का काम करती हैं। इसके साथ ही यह भी कारण है कि इस इलाक़े में पहले के मुक़ाबले अब उच्च तकनीक के कारख़ाने बन रहे हैं और इन कारख़ानों में आटोमेटिक मशीनें लगी हैं, जिन्हें महिलाएँ भी आसानी से चला लेती हैं। इस इलाक़े में धागा मिलें भी हैं, जिनमें जटिल काम ज़्यादा होता है। इनमें भी पुरुषों के मुक़ाबले महिलाएँ ज़्यादा कुशलता से काम कर लेती हैं। नतीजन ऐसे कारख़ानों वाले इलाक़ों में महिलाओं की संख्या पुरुषों से ज़्यादा होती है।

इस तरह के और भी कई कारण हो सकते हैं, पर अच्छी बात यह है कि महिलाएँ अब चारदीवारी से बाहर निकलकर कारख़ानों में काम कर रही हैं। उत्पादन में मर्दों के मुक़ाबले बराबर की भूमिका निभा रही हैं। पर साथ ही यह बात भी नहीं भूलनी चाहिए कि कारख़ानों में भी मालिक उनकी लूट करते हैं और वहाँ भी वे सुरक्षित नहीं हैं। अब हमें ज़रूरत है कि महिला मज़दूरों को संगठित करें। इन्हें शिक्षित करने पर ज़ोर दें, क्योंकि महिलाओं की पूर्ण मुक्ति का रास्ता भी मज़दूर इंक़लाब से होकर ही गुज़रता है।

**– विश्वनाथ**


## मुक्ति संग्राम

**दफ़्तर फ़ोन नं.–** 83607-66937 **ईमेल –** muktisangram.hindi@gmail.com

**सहयोग राशि** - एक प्रति - 10 रुपए

**सालाना** - 120 रुपए (डाक के ज़रिए - 150 रुपए)

मुक्ति संग्राम के लिए सहयोग राशि नीचे दिए गए बैंक खाते/UPI के ज़रिए भेजें।

राशि भेजकर उपरोक्त फ़ोन नंबर पर सूचित ज़रूर कर दें।

**UPI No.** – 1851 1951 और 83607 66937

**UPI ID** MUKTISANGRAAM@SBI

**Lakhwinder Singh**

A/c No. – 5514 000 7508

STATE BANK OF INDIA

BRANCH – Khanna NGM

IFSC CODE – SBIN0050171


## मुक्ति संग्राम यहाँ से प्राप्त करें

- शहीद भगतसिंह पुस्तकालय, #498, एल.आई.जी. फ़्लैट्स, जमालपुर कालोनी, लुधियाणा – 83607-66937
- मज़दूर पुस्तकालय, #4135, ई.डब्ल्यू.एस. कालोनी, ताजपुर रोड, लुधियाणा – 85910-90800
- जनचेतना, दुकान नं. 8, पंजाबी भवन, लुधियाणा – 70429-76396
- मानव, चंडीगढ़ – 98888-08188
- पावेल, सिरसा – 86078-89902
- मनन, शिमला – 98162-37848

**मज़दूर साथियो,**

**मुक्ति संग्राम आपका अपना अख़बार है। आप अपने कारख़ाने, अपनी बस्ती में मज़दूरों-मेहनतकशों के हालातों के बारे लिखकर भेजिए। समाज में मज़दूरों-मेहनतकशों के साथ होने वाली बेइंसाफ़ी, लूट-शोषण-उत्पीड़न के और संघर्षों के अपने तजुर्बों के बारे में लिखकर भेजिए। आपको मुक्ति संग्राम में छपी सामग्री कैसी लगती है, आपको इसमें क्या कमियाँ-कमज़ोरियाँ नज़र आती हैं – बेझिझक लिखकर भेजिए। आपके सुझाव मुक्ति संग्राम को बेहतर बनाने के लिए बहुत ज़रूरी हैं।**

**– संपादक, मुक्ति संग्राम**

**ऑनलाइन 'मुक्ति संग्राम' पढ़ने के लिए नीचे दिए गए साइट और फ़ेसबुक पन्ने के लिंक पर जाएँ :**

**साइट – muktisangram.wordpress.com**

**फ़ेसबुक पन्ना – facebook.com/muktisangrammag**

**मुक्ति संग्राम के लेख-टिप्पणियाँ और अन्य साम्रगी अपने वट्सअप पर मगँवाने के लिए अपना वट्सअप नंबर और पता इस नंबर पर भेजें :**

**83607-66937**

# मैकडॉनाल्ड्स के कर्मचारियों की दर्द-भरी कहानी

आपने फ़ास्ट फ़ूड कंपनी मैकडॉनाल्ड्स का नाम तो सुना ही होगा और आपमें से कई लोगों ने इसके स्टोर पर जाकर कुछ-न-कुछ खाया भी होगा। खाते-पीते घरों के लोग जिस कंपनी के बर्गर बड़े चाव से खाते हैं, इन चीज़ों को बनाने वाले और उन तक डिलीवर करने वाले उन मज़दूरों के बारे में शायद ही कोई सोचता है, क्योंकि मीडिया के विज्ञापनों में भी ये मज़दूर पूरी तरह से ग़ायब हैं।

मैकडॉनाल्ड्स का 100 से अधिक देशों में कारोबार होता है। एक मज़दूर के तौर पर मैं भी इस बड़े बिज़नेस का एक छोटा-सा हिस्सा रहा हूँ। चंडीगढ़ में मैकडॉनाल्ड्स स्टोर्स में काम करने वाले मज़दूरों को प्रति घंटे लगभग 53 रुपए का भुगतान किया जाता है, यानी 9 घंटे के दिन के लिए 477 रुपए। लेकिन कटकटा कर पूरे महीने की सैलरी लगभग दस हज़ार रुपए होती है। इतनी बड़ी कंपनी और इतने कम वेतन पर बिना रुके काम करने वाले मज़दूरों का, जिसमें युवाओं की संख्या ज़्यादा है, गुज़ारा कैसे होता होगा। इसके बारे में कंपनी के पूँजीपतियों ने कभी नहीं सोचा और ना कभी सोचेंगे। पिछले चार सालों में मैकडॉनाल्ड्स ने महज़ 3 रुपए प्रति घंटे की बढ़ोतरी के साथ 27 रुपए प्रतिदिन की बढोत्तरी की है, जबकि दूसरी ओर 2022 में इसका कारोबार 23 अरब अमेरिकी डॉलर से भी ज़्यादा रहा।

कम मज़दूरी पर काम कराकर कंपनी ना केवल मज़दूरों को लूटती है, बल्कि उन्हें शारीरिक और मानसिक रूप से भी निचोड़ देती है। मैकडॉनाल्ड्स रेस्तराँ में ग्राहकों के बैठने की एक जगह होती है, जिसे लॉबी कहा जाता है। लॉबी में काम करने वाले मज़दूरों को हर वक़्त खड़ा रहना पड़ता है। आधे घंटे के लंच के समय को छोड़कर बाक़ी समय कर्मचारी वहाँ नहीं बैठ सकते। इतने घंटों तक लगातार खड़े रहने के कारण यहाँ लंबी शिफ़्ट में काम करने वाले मज़दूरों को शारीरिक समस्याएँ, जोड़ों और पीठ दर्द की समस्याएँ होना स्वाभाविक है। अगर आप थोड़ा-बहुत भी इधर-उधर हो जाते हैं, तो मैनेजर आपको डाँटना शुरू कर देंगे। इसी तरह, मैकडॉनाल्ड्स के प्रसिद्ध फ्रेंच फ्राइज़ बनाने वाले कर्मचारियों को फ्राइज़ को उबलते तेल के बड़े कड़ाहे में तलना पड़ता है और इस के लिए उन्हें उनकी सुरक्षा के लिए कुछ भी नहीं दिया जाता है। सुरक्षा के नाम पर एक पतला-सा प्लास्टिक का दस्ताना है, जो किसी ख़ास काम का नहीं है और अक्सर गर्म तेल के छींटे बाज़ुओं पर पड़ते हैं और दस्तानों पर पड़ने से अक्सर ये जल भी जाते हैं।

हमारे साथ रेस्टोरेंट में काम करने वाली लड़कियों को तो अक्सर ही दोहरी मार झेलनी पड़ती है। एक तो काम का बोझ होता है और दूसरा अक्सर बिगड़ैल ग्राहकों की बुरी नज़र भी झेलनी पड़ती है। मैनेजर तो अक्सर ही लड़कियों से मज़ाक़ के बहाने नज़दीकियाँ बढ़ाते नज़र आते हैं। ऐसा सिर्फ़ भारत में ही नहीं, बल्कि विदेशों में भी होता है। ब्रिटेन में मैकडॉनाल्ड्स स्टोर्स पर लड़कियों के हुए यौन शोषण की एक बड़ी घटना की जाँच अब चल रही है, जिसमें 100 से अधिक महिला कर्मचारियों ने कंपनी के अधिकारियों पर दुर्व्यवहार का आरोप लगाया है। लेकिन इतने संजीदा मामले में भी शिकायतों के बावजूद कंपनी की ओर से कोई जाँच नहीं की गई और अब जब मामला सामने आया तो कंपनी अपना बचाव करने की कोशिश कर रही है।

काम पर आने का बोझ, ख़ासकर काम वाले दिनों में और त्योहारों के दिनों में, बहुत भारी होता है। ऐसे में अगर किसी मज़दूर की तबीयत ख़राब हो जाए या कोई और ज़रूरी काम हो, तो उस पर ध्यान नहीं दिया जाता और अगर मज़दूर मजबूरी में छुट्टी ले लेता है, तो उसे काम से निकाल दिया जाता है। त्योहारों के दौरान जहाँ लोग अपने परिवार के साथ समय बिताना पसंद करते हैं, खाते-पीते घरों के लोग अपने परिवार और बच्चों के साथ मैकडॉनाल्ड्स जैसी दुकानों में खाना खाने आते हैं, ऐसे दिनों में हम मेहनतकशों को कोई छुट्टी लेने की इजाज़त नहीं होती है, बल्कि हमें ओवरटाइम लगाने को कहा जाता है। अगर कोई ग्राहक शिकायत करता है, तो सारा कसूर कर्मचारियों पर मढ़ दिया जाता है। एक बार एक ग्राहक ने दिवाली पर हमारे साथ काम करने वाली एक लड़की को 2000 का नक़ली नोट दिया। त्योहार के दौरान ग्राहकों की भीड़ अधिक होने के कारण उसे इसकी जानकारी नहीं हुई। कंपनी ने इस नुक़सान को अपने खाते में जमा करने के बजाय लड़की को ड्यूटी के बाद भी रात तक बैठाए रखा, जब तक कि उसने अपनी तरफ़ से 2000 रुपए जमा नहीं करवाए। ग्राहक से टिप लेना बेशक ग़लत है और इससे हम मज़दूरों का नैतिक पतन होता है, लेकिन इस मामले में कंपनी का रवैया भी मज़दूरों के प्रति शंका वाला रहता है। अगर किसी ग्राहक से टिप मिलती है, तो उसे कंपनी में जमा करवाना पड़ता है। इसके अलावा हमारे कर्मचारियों को दी जाने वाली वर्दी में जेब नहीं होती है कि कहीं हम ग्राहक से मिली टिप को छिपा ना सकें। यानी शक की निगाह से ही हमारी निगरानी रखी जाती है।

यह हालत है दुनिया की सबसे बड़ी और मशहूर कंपनी का, जिसका विज्ञापन मशहूर फ़िल्मी सितारे करते हैं। ऐसे हालात सिर्फ़ मैकडॉनाल्ड्स में ही नहीं हैं। सभी कंपनियों में मज़दूरों का शोषण इसी क्रूर तरीक़े से किया जाता है। आज हम मज़दूरों को इस सच्चाई को समझने की ज़रूरत है कि कोई एक कंपनी या एक मालिक नहीं, बल्कि पूरा पूँजीपति वर्ग ही लुटेरा वर्ग है, जो मज़दूरों की मेहनत पर फल-फूल रहा है। इसलिए हमारी लड़ाई किसी एक कंपनी या मालिक के ख़िलाफ़ नहीं, बल्कि इस पूरे पूँजीवादी ढाँचे के ख़िलाफ़ होनी चाहिए।

**– हर्ष**, चंडीगढ़

# नारायण मूर्ति का मज़दूर विरोधी बयान: पूँजीपतियों की मज़दूर विरोधी मानसिकता की अभिव्यक्ति

इंफ़ोसिस कंपनी के मालिक नारायण मूर्ति ने पिछले महीने बयान दिया है कि "हमारे नौजवानों को यह कहना चाहिए कि यह मेरा देश है और मुझे इसके लिए हफ़्ते में 70 घंटे काम करने की ज़रूरत है। नेताओं को भी यह पक्का करना होगा। विकसित देश जैसे कि जर्मनी और जापान ने भी ऐसा ही किया है।" यह कोई पहली बार नहीं कि मूर्ति ने ऐसा बयान दिया हो, पहले भी ऐसे उपदेश 2021 में सुनने को मिले थे। मूर्ति के इस बयान को कितने ही पूँजीपतियों ने समर्थन दिया है। 'ज़िंदल साउथ-वेस्ट' ग्रुप के मालिक सज्जन मित्तल का इसके समर्थन में कहना है – "यह थकावट का मामला नहीं, बल्कि समर्पण का है। हमें भारत को एक आर्थिक महाशक्ति बनाना होगा, जिस पर हमें गर्व हो।" यह बात असल में इन पूँजीपतियों ने काम के घंटे बढ़ाने के अपने मंसूबों को कथित देशभक्ति के चोगे में लपेटकर पेश किया है। मज़दूरों से ज़्यादा काम लेना इक्के-दुक्के पूँजीपति की इच्छा नहीं है, बल्कि पूरे पूँजीपति वर्ग की गरज है।

एक बात तो साफ़ है कि जब-जब देश के अंदर ग़रीबी, महँगाई, बेरोज़गारी बढ़ रही होती है, तो कई बार शासक वर्ग के विचारकों की ओर से ऐसे प्रवचन सुनने को मिलते हैं। अक्टूबर में मूर्ति के बयान के अलावा सी.एम. आई.ई. के बेरोज़गारी के आँकड़े भी आए हैं। बेरोज़गारी दर सितंबर में 7.09% से बढ़कर अक्टूबर में 10.05% हो गई है। ऐसा समय इनके लिए नौजवानों को 'प्रेरणा' देने का सही समय होता है। मूर्ति के इस 'अनमोल' विचार को सरकारी नीतियों में पहले से ही जगह मिल चुकी है। मूर्ति के यह कहने से पहले ही कि "नेताओं को पक्का करना होगा कि नौजवान हर हफ़्ते 70 घंटे काम करे।" मोदी हुकूमत 4 श्रम कोड लेकर आ गई, जिनमें एक दिन में काम करने के हद को 8 घंटे से बढ़ाकर 12 घंटे कर दिया गया है। पंजाब की आम आदमी पार्टी की सरकार ने 30 सितंबर को फ़ैसला लेते हुए कारख़ानेदारों को यह खुली छूट दे दी है कि वे मज़दूरों से एक दिन के अंदर 4 घंटे ओवरटाइम काम करवा सकते हैं। हैरानी की बात तो यह है कि जनता की माँगें तो कितने ही धरने-प्रदर्शनों के बाद भी नहीं मानी जातीं, पर मूर्ति जैसे धन्नासेठों की माँगें उनके कहने से पहले ही अमल में ला दी जाती हैं।

भारत में कथित राष्ट्रवाद के पर्दे के पीछे ऐसी ग़लत और जनविरोधी बकवास अक्सर की जाती है। जैसे कि – "अदानी पर सवाल उठाना, देश की इज़्ज़त पर हमला है" और अब 'पूँजीपतियों के मुनाफ़े के लिए गधों की तरह काम ना करना मतलब देश की तरक़्क़ी में बाधा डालना है'। पहली बात जो मूर्ति कहता है कि देश की तरक़्क़ी के लिए नौजवानों को 70 घंटे हर हफ़्ते काम करना होगा, क्या इससे ही उत्पादकता बढ़ेगी, जो तरक़्क़ी में तब्दील होगी। पर सच्चाई यह है कि उत्पादकता पैदावारी ताक़तों के विकास से जुड़ी हुई चीज़ है। किसी समाज में काम के घंटे कम होने के

**(अगले पन्ने पर जारी)**

(पिछले पन्ने से आगे)

बावजूद उत्पादकता का स्तर ऊँचा हो सकता है। विकसित देशों में काम के घंटे सबसे कम होने के बावजूद उत्पादकता में वृद्धि इसका सबूत है। मिसाल के तौर पर फ़्रांस, जहाँ प्रति व्यक्ति कुल घरेलू उत्पादन 36,31,880 रुपए है, में हफ़्ते में काम के औसत घंटे सिर्फ़ 36 हैं। इसी तरह जर्मनी, संयुक्त राज्य अमेरिका जैसे देशों में काम के घंटे कम होने के बावजूद उत्पादकता भारत जैसे देशों के मुक़ाबले कहीं ज़्यादा है। निश्चित ही, यह इन देशों में पैदावारी ताक़तों के उच्च स्तर के कारण है, जिसमें बहुत अहम भूमिका इनके द्वारा भारत समेत तीसरी दुनिया के देशों की की जा रही साम्राज्यवादी लूट का भी है। अगर भारत की बात करें, तो यह सबसे ज़्यादा काम के घंटे के मामले में विश्व-स्तर पर सातवें स्थान पर है। भारत के मज़दूरों का बड़ा हिस्सा तो प्रतिदिन 12 से 14 घंटे भी काम कर रहा है, यानी प्रति हफ़्ता 70 घंटे से भी ज़्यादा! मूर्ति के तर्क के अनुसार तो फिर भारत तरक़्क़ी के मामले में सबसे आगे होना चाहिए था। पर हक़ीक़त में ऐसा कुछ भी नहीं है।

दूसरी बात जो मूर्ति कहता है कि "जर्मनों और जापानियों ने दूसरे विश्व युद्ध के बाद काम के घंटे बढ़ा दिए, तभी वे तरक़्क़ी पर है।" यह भी एक कोरा झूठ है। यूरोप में 19वीं सदी के अंत में और 20वीं सदी की शुरुआत से ही संघर्षों के चलते मज़दूरों ने मालिकों से हफ़्ते में काम के घंटे 48 तक घटवाए। दूसरे विश्व युद्ध के बाद तो जर्मनी और जापान में काम के घंटों को घटाने को लेकर बड़े संघर्ष लड़े गए, जिनकी बदौलत इनमें बड़ी कमी आई। 1978 में जर्मनी के मज़दूरों द्वारा हफ़्ते में काम के घंटे 35 करवाने के लिए 6 हफ़्ते की हड़ताल की गई, इसके निष्कर्ष के रूप में काम के घंटे 37.5 हुए। जर्मनी में मौजूदा समय हफ़्ते में काम के घंटे की हद औसत 34 घंटे है। यानी कि मूर्ति बिल्कुल उल्टी बात कह रहा है। बल्कि हमें जर्मनी और जापान के मज़दूरों की तरह संघर्ष के रास्ते पर चलकर काम के घंटे घटाने की ज़रूरत है, ताकि मज़दूरों पर से काम का बोझ कम हो सके।

पूँजीपति मज़दूर से ओवरटाइम चाहते हैं, पर क्या उन्हें ओवरटाइम की बनती तनख़्वाह दी जाएगी। मौजूदा हालातों को देखकर तो ऐसा नहीं लगता। ग़ौरतलब है कि मज़दूर पहले ही ओवरटाइम काम कर रहे हैं, क्योंकि 8 घंटे के काम की तनख़्वाह से उनका गुज़ारा नहीं होता। कई मज़दूरों को तो दो-दो नौकरियाँ करनी पड़ती हैं। हाल ही में दिल्ली सरकार ने मज़दूरों के न्यूनतम वेतन में तकरीबन 207 रुपए की महीनावार बढ़ौतरी की है यानी रोज़ाना 10 रुपए से भी कम बढ़ौतरी! ऊपर से यह बढ़ौतरी भी ज़्यादातर तो न्यूनतम वेतन पर लागू भी नहीं होती और संगठित क्षेत्र के थोड़े-से पक्के मज़दूरों तक सीमित होकर रह जाती है। साफ़ है कि पूँजीपति ज़्यादा काम तो चाहते हैं, पर वे मज़दूरों की तनख़्वाह ज़रा भी बढ़ाने को तैयार नहीं हैं।

काम के बोझ तले होने की बात करें तो भारत के मज़दूर संसार-भर में सबसे ज़्यादा बोझ उठाते हैं, पर इसके बावजूद बेहद कम तनख़्वाह लेते हैं। अगर नारायण मूर्ति की कंपनी इंफ़ोसिस की ही बात करें, तो 10 सालों में कंपनी के नए मज़दूरों की तनख़्वाह 23 हज़ार रुपए से बढ़कर सिर्फ़ 30 हज़ार ही हुई है। असल वेतन तो घटा ही है। दूसरी तरफ़ कंपनी के सी.ई.ओ. और दूसरे उच्च अधिकारियों की तनख़्वाह आठ-आठ गुना तक बढ़ी है।

मतलब की मूर्ति का बयान बिल्कुल बेबुनियाद है, पर इसके पीछे पूँजीपति वर्ग का अपना हित है। इनके लिए देश की तरक़्क़ी का मतलब अपने मुनाफ़ों में बढ़ौतरी होता है। अगर इनमें देश के प्रति इतना ही जज़्बा जागा है, तो ये काम के घंटे घटाके कितने ही नौजवानों को रोज़गार दे सकते हैं। पर नौजवानों को रोज़गार देना ना तो पूँजीपतियों का और ना इस पूरे ढाँचे का मक़सद है। उनका मक़सद तो मज़दूरों की लूट को बढ़ाना है, ताकि अपने मुनाफ़े और बढ़ा सकें।

काम के घंटे बढ़ाने के भयानक परिणाम पहले ही मज़दूर भुगत रहे हैं। आँकड़े भी यही कहते हैं कि 8 घंटे से ज़्यादा काम मानसिक और शारीरिक तनाव बढ़ाता है। पूँजीपति चाहते हैं कि मज़दूरों का अपना ख़ाली समय और ऊर्जा भी अपने-अपने परिवार की जगह पूँजीपतियों के मुनाफ़े के हत्थे ही आए। असल में यह मौजूदा व्यवस्था की बनावट ही ऐसी है। पूँजीपतियों का मुनाफ़ा मज़दूरों की लूट पर टिका हुआ है। मूर्ति का बयान मज़दूरों की लूट को और बढ़ावा देने की बात करता है। अगर मूर्ति जैसे धन्नासेठ सच में कोई भला चाहते हैं, तो ये अपने पूँजीवादी टोले के दूसरे धन्नासेठों को यह नसीहत क्यों नहीं देते कि वे बट्टा खाते डाले गए 14.5 लाख करोड़ का क़र्ज़ा चुकाएँ, कि वे काम के घंटे घटाकर नए हाथों को रोज़गार दें, कि वे टैक्सों में अपनी हिस्सेदारी बढ़ाएँ जिसे लोगों की भलाई के लिए ख़र्च किया जा सके। पर नारायण मूर्ति ऐसी सलाह कभी नहीं देगा, क्योंकि इसके लिए तरक़्क़ी के अर्थ कुछ और है।

मज़दूरों ने हफ़्तावारी छुट्टी और काम के घंटे 8 करवाने के लिए दुनिया-भर में शानदार संघर्ष लड़े हैं। आज मज़दूर आंदोलन कमज़ोर हालत में होने के कारण पूँजीपति अपने मनमुताबिक़ मज़दूर विरोधी नीतियाँ थोप रहे हैं। दुनिया-भर में मज़दूरों से सहूलतें छीनी जा रही हैं। दूसरी तरफ़, विज्ञान की तरक़्क़ी ने काम का बोझ घटाने के लिए ज़मीन तैयार कर दी है, पर पूँजीवादी ढाँचे के रहते नई तकनीक का इस्तेमाल भी मज़दूरों के काम के बोझ घटाने की जगह उनकी लूट तेज़ करने का सबब बन रही है। इसलिए आज इस पूँजीवादी व्यवस्था को ही जड़ से बदलकर समाजवादी व्यवस्था को क़ायम करने की ज़रूरत है और इस लंबे संघर्ष के लिए मज़दूरों को संगठित होने की ज़रूरत है।

**– जोबन**

# बच्चों के शारीरिक शोषण के विरुद्ध चुप्पी तोड़ो!

एक अच्छे माहौल में मानसिक और शारीरिक सरगर्मियों से भरपूर बचपन भविष्य के लिए ज़्यादा समझदार और मूल्यवान नागरिक बनाने में सहायक होता है। पर मौजूदा व्यवस्था में बड़े हिस्से का बचपन ख़ुशहाल नहीं होता, अनेकों लोग तो बचपन की बुरी यादों के साथ पूरी उमर जूझते रहते हैं। ये बुरी यादें, बचपन में उनके साथ हुए यौन शोषण, मारपीट आदि की घटनाओं से जुड़े हुए होते हैं। आँकड़ों के अनुसार लगभग 33.6% बच्चे यौन अपराधों से पीड़ित होते हैं। साल 2021 में 1,49,404 मामले बच्चों के ख़िलाफ़ हुए अपराधों के लिए दर्ज किए गए थे। हर बीतते साल इन मामलों में बढ़ौतरी हो रही है। इसी साल मार्च महीने में भारत के पुलिस अधिकारियों, मंत्रियों, सोशल मीडिया कंपनियों और अंतरराष्ट्रीय संस्थाओं ने एक कांफ्रेंस की थी, जिसका मुद्दा था – यौन शोषण से पीड़ित बच्चों से जुड़ी वीडियो, तस्वीरें और ऐसी दूसरी सामग्री जो इंटरनेट पर मौजूद है। इस कांफ्रेंस में जुड़ी भीड़ सरकारी तंत्र की ही थी, बहुत सारे क़ानून पहले ही बने हुए हैं, बहुत सारे मंत्रियों के नाम बलात्कार जैसे अपराधों में जुड़े होते हैं। इस कांफ्रेंस से तो कोई उम्मीद नहीं रखी जानी चाहिए। लेकिन यह मुद्दा लोगों का है, इस देश के बच्चों का है, यह एक गंभीर मामला है।

आज फ़िल्में, सोशल मीडिया, स्नैपचैट, इंस्टाग्राम, आदि पर ऐसी सामग्री की भरमार है, जिसमें बच्चों, बालिग लड़कियों और औरतों के ख़िलाफ़ हुए यौन शोषण की नुमाइश होती है। फ़िल्मों में भी ऐसे अपराधों से जुड़े दृश्य फ़िल्माते हुए संवेदनहीनता की हद पार की हुई होती है। आज विश्व स्तर पर बच्चों से जुड़े यौन संबंधों के वीडियो का धंधा बड़े स्तर पर है। इस सबकी बात यहाँ इसलिए कर रहे हैं, क्योंकि जन्म से कोई मनुष्य अपराधी नहीं होता। धीरे-धीरे गंदी संस्कृति का अंधेरा दिमाग़ को दूषित करता है। बुरे आर्थिक-सामाजिक हालात ही मनुष्य को अपराध की दुनिया की तरफ़ धकेलते हैं। बेहिसाब मुनाफ़े पर टिके इस ढाँचे में, बड़े मुनाफ़े कमाने के लिए अपराधों का धंधा भी किया जाता है। ऐसी सामग्री को देखके इंसान अपने इंसानी गुणों से दूर होता हुआ पशु बनने की तरफ़ बढ़ता है। बालिग लड़के बलात्कारी बन जाते हैं। छोटे बच्चों को निशाना बनाया जाता है।

बच्चे एक आसान निशाना होते हैं, वे अपराध को ही समझने के योग्य नहीं होते। बच्चे अपने मां-बाप को सही शब्दों का इस्तेमाल करके समझाने के योग्य नहीं होते कि उनके साथ कुछ ग़लत हुआ है या हो रहा है! अक्सर ऐसे अपराध करीबी रिश्तेदारों, पड़ोसियों, जानकारों द्वारा किए जाते हैं! बचपन में हुई शारीरिक छेड़छाड़, बलात्कार की घटना सारी उम्र के लिए उनकी ज़िंदगी में एक धब्बा बन जाती है, आत्मविश्वास की कमी, चिड़चिड़ापन, शारीरिक समस्याएँ, डर उनके दिमाग़ों में घर कर जाता है। बच्चे या बालिग अक्सर डर के कारण यौन शोषण के समय दोषी के ख़िलाफ़ कुछ बोल या लड़ नहीं पाते, इस वजह से भी सारी उम्र वे हीन भावना, ख़ुद को कमज़ोर समझने की भावना में ज़िंदगी जीते हैं। हमारे समाज में इन सब पर खुलकर बातचीत करना आज भी मुश्किल है। पीड़ित को हमदर्दी के साथ उसके मन में बसे डर को दूर करने की कोशिशें कहीं दिखाई नहीं देतीं। सारी ज़िंदगी पीड़ित अपने बचपन में हुई काली घटनाओं की यादों में क़ैद रहता है।

क्या यह सब कुछ ऐसे ही चलता रहेगा? क्या इंसान हमेशा अपराधी बनता रहेगा? क्या इंसान दर्द को सहता हुआ अधूरी ज़िंदगी जीता रहेगा? नहीं, हमेशा यह सब कुछ नहीं रहेगा। ऐसा समाज संभव है जो बच्चों, औरतों और आम जनता के लिए रहने योग्य होगा।

ज़रूर ही हमें ऐसे भविष्य के सपने देखने चाहिए, जहाँ मनुष्य अपने अच्छे गुणों को ही हासिल करना सीखे। आज हमें ऐसे भविष्य के लिए लड़ना पड़ेगा। दोषी की समाज में शिनाख़्त करना ज़रूरी है, इसलिए लाजमी है कि चुप्पी तोड़नी पड़ेगी। इंसाफ़ के लिए लड़ना पड़ेगा। बेहतर भविष्य के लिए जर्जर पड़ चुकी पूँजीवादी व्यवस्था, मुनाफ़े पर टिके दोषी पूँजीवादी-सामाजिक ढाँचे को बदलने के लिए आगे आना पड़ेगा।

**– रविंदर कौर**

# महाराष्ट्र की स्वास्थ्य व्यवस्था की पोल खोलती नांदेड़ अस्पताल में हुईं मौतें

"अब मैं अपनी पत्नी नगमा को क्या जवाब दूँगा, वह यह सुनकर टूट जाएगी, मेरे बच्चे की मौत की ज़िम्मेदार सरकार है।"

ये शब्द अज़ीम खान के हैं, जो अपने तीन दिन के नवजात बच्चे को नांदेड़ अस्पताल लेकर आया था, लेकिन डॉक्टरों ने उसे बताया कि सीजेरियन ऑपरेशन के दौरान बच्चे ने गंदा पानी पी लिया और उसकी हालत नाज़ुक हो गई और अब उसे वेंटिलेटर की ज़रूरत है। लेकिन डॉक्टरों की लापरवाही, दवाइयों और स्वास्थ्य मुलाज़मों की कमी के कारण उसके नवजात बच्चे की मौत हो गई। उसने बताया कि वह परभणी ज़िले से 80 किलोमीटर का सफ़र करके अपने बच्चे की ज़िंदगी के लिए नांदेड़ आया था। लेकिन इस अस्पताल ने उसके बच्चे की ज़िंदगी छीन ली।

नांदेड का अस्पताल 1 अक्टूबर से चर्चा का विषय बना रहा, जहाँ 48 घंटों में 45 लोगों की मौत हो गई, जिसमें 31 बड़े और 14 नवजात बच्चे शामिल थे। 600 बिस्तरों वाला यह अस्पताल महाराष्ट्र के मराठवाड़ा और विदर्भ के क्षेत्रों के साथ-साथ तेलंगाना के सरहदी ज़िलों के लोगों को स्वास्थ्य सुविधाएँ मुहैय्या करवाता है। इस अस्पताल की खस्ता हालत और स्वास्थ्य सुविधाओं की कमी के बारे में प्रशासन को पहले भी रिपोर्ट की जा चुकी थी, लेकिन जैसा कि अक्सर होता है, प्रशासन के कानों पर जूँ तक नहीं रेंगी। सिर्फ़ यहाँ ही नहीं, औरंगाबाद के एक सरकारी अस्पताल में भी स्वास्थ्य सुविधाओं की कमी के कारण 14 लोगों की मौत हो गई।

इन ख़बरों के आने के बाद महाराष्ट्र सरकार में हड़कंप मच गया। शिंदे सरकार ने प्रेस बयान जारी करते हुए कहा कि वह जल्दी ही एक उच्च-स्तरीय कमेटी बनाकर इसकी जाँच करवाएँगे और दोषियों को सख़्त से सख़्त सज़ा दी जाएगी। लेकिन यह बयान भी सिर्फ़ मसले को रफ़ा-दफ़ा करने के लिए ही दिया गया। असल में इन मौतों के लिए यह खस्ताहाल सरकारी स्वास्थ्यगत ढाँचा और इसे खस्ताहाल बनाने वाली सारी पूँजीवादी सरकारें ही सीधे तौर पर ज़िम्मेदार हैं।

12 करोड़ की आबादी वाले महाराष्ट्र राज्य में सिर्फ़ 70 बड़े अस्पताल और 2640 प्राइमरी स्वास्थ्य केंद्र और सामुदायिक स्वास्थ्य केंद्र (डिस्पेंसरियाँ) हैं। विश्व स्वास्थ्य संगठन के मुताबिक़ 1000 लोगों पर एक डॉक्टर होना चाहिए, लेकिन यहाँ 10,000 लोगों पर भी एक डॉक्टर नहीं है। कुछ अंतरराष्ट्रीय पैमानों के अनुसार अच्छा स्वास्थ्यगत ढाँचा उसे माना जाता है, जहाँ सरकार अपनी सकल घरेलू पैदावार का 5 फ़ीसदी हिस्सा स्वास्थ्य सुविधाओं पर ख़र्च करे। लेकिन पिछले 15 साल से महाराष्ट्र में किसी भी सरकार ने 1 फ़ीसदी से ज़्यादा हिस्सा स्वास्थ्य सुविधाओं पर नहीं ख़र्चा, बल्कि लगातार स्वास्थ्य बजट में कटौती की जा रही है। महाराष्ट्र का स्वास्थ्य बजट जो साल 2021-22 में 15,860 करोड़ रुपए था, वह वित्तीय साल 2023-24 में घटकर 14,726 करोड़ रह गया। इसलिए इन सारी ही मौतों के लिए सरकारी व्यवस्था पूरी तरह ज़िम्मेदार है।

पूरे देश में स्वास्थ्यगत ढाँचा के हालात महाराष्ट्र के हालातों से कोई भिन्न नहीं हैं!

संयुक्त राष्ट्र विकास प्रोग्राम की एक रिपोर्ट के अनुसार देश में 10,000 लोगों पर सिर्फ़ एक डॉक्टर और पाँच बेड आते हैं, जो कि भारत में स्वास्थ्य क्षेत्र की भयानक हालत को दर्शाते हैं। इस रिपोर्ट के मुताबिक़ 167 देशों की सूची में भारत का 155वाँ नंबर है। देश में बुनियादी स्वास्थ्य सुविधाओं की भारी कमी है। 1947 से लेकर अब तक किसी भी सरकार ने सकल घरेलू पैदावार का 5 फ़ीसदी हिस्सा स्वास्थ्य सुविधाओं पर कभी नहीं ख़र्चा, बल्कि लगातार इसमें कटौती ही की है। एक ओर तो चंदों की कमी के कारण सरकारी स्वास्थ्यगत ढाँचा ख़ुद वेंटिलेटर पर पड़ा है, वहीं यूनियन और राज्य सरकारें निजी अस्पतालों, दवाई कंपनियों पर मेहरबान होती हुईं लगातार इन्हें सुविधाएँ दे रही हैं। आज भारत के स्वास्थ्य क्षेत्र पर निजी संस्थान हावी हो चुके हैं। इसी प्रकार मोदी सरकार लगातार सार्वजनिक सुविधाओं में कटौती करती जा रही है। इसने पिछले 8 सालों में ऊपर के 150 पूँजीपतियों का 12.08 लाख करोड़ का क़र्ज़ माफ़ किया है। लेकिन दूसरी ओर जनता इलाज महँगा होने के कारण मर रही है।

आज जनता को यह समझ लेना चाहिए कि ये मौतें कोई क़ुदरती नहीं, बल्कि इस व्यवस्था के द्वारा किए जा रहे क़त्ल हैं और मौजूदा पूँजीवादी सरकारें इस सबके लिए ज़िम्मेदार हैं, जो हमारी मेहनत की कमाई को टैक्स के रूप में इकट्ठा करती हैं और इससे पूँजीपतियों की तिजोरियाँ भरती हैं। आज जनता को संगठित होकर सरकारी स्वास्थ्य सुविधाओं के अधिकार के लिए सरकारों पर दबाव डालने की ज़रूरत है।

**– पुष्पिंदर**

# बिना संगठन के क़ानूनी अधिकारों से भी वंचित मज़दूर

मज़दूरों ने इतिहास में लंबे संघर्षों से अपने लिए अनेकों अधिकार जीते हैं और इन अधिकारों को क़ानूनी रूप में मान्यता दिलवाई है, चाहे वो काम के घंटे तय करने का अधिकार हो, चाहे न्यूनतम वेतन का और या बोनस, ग्रेच्युटी, पैंशन आदि जैसे भत्तों का अधिकार हो। लेकिन मज़दूर लहर के बिखराव से पूँजीवादी मालिकों और इनकी चाकर सरकारों को इन अधिकारों को छीनने का खुला मौक़ा दे दिया है। हालात आज ऐसे बने हुए हैं कि क़ानूनी तौर पर प्रमाणित अधिकार लेने के लिए भी मज़दूरों को दर-दर के धक्के खाने के लिए मज़बूर किया जा रहा है। मज़दूरों को कैसे अपने जायज़, क़ानूनी अधिकारों से भी वंचित किया जाता है, इसकी दो मिसालें पिछले दिनों मज़दूरों के बीच प्रचार के दौरान देखीं।

चंडीगढ़ के मज़दूर इलाक़े हल्लोमाज़रा में क्रांतिकारी अख़बार का प्रचार करते हुए दो परिवार मिले। एक अँधेरे भरे गंदे से बेड़े में एक कमरे में रह रहे मज़दूर अजय यादव से बात हुई, जो 26 साल पहले यू.पी. से चंडीगढ़ आए थे। पहले उन्होंने पंद्रह साल टूटी बनाने वाले एक कारख़ाने में काम किया, 2012 में यह कारख़ाना बंद हो गया। ग्रेच्युटी अदायगी क़ानून 1972 के अनुसार हर उस कंपनी में जहाँ बीस से अधिक मज़दूर काम करते हैं, वहाँ कंपनी को हर उस मज़दूर को ख़ास रक़म ग्रेच्युटी के रूप में अदा करनी होती है, जो कंपनी में पाँच साल से अधिक काम कर चुका हो। यह रक़म मोटे तौर पर एक साल के लिए पंद्रह दिन का वेतन होती है यानी कि जैसे ऊपर वाले मज़दूर अजय

यादन ने पंद्रह साल टूटी बनाने वाले कारख़ाने में काम किया, तो वो पंद्रह गुणा पंद्रह यानी 225 दिन का वेतन यानी लगभग आठ महीने की तनख़्वाह बतौर ग्रेच्युटी हासिल करने के हक़दार थे, जो करीब 90,000 रुपया बनता है। लेकिन मालिक ने उस जैसे पच्चीस अन्य मज़दूरों का यह पैसा दबा लिया। मज़दूरों ने और कोई उपाय ना पाकर इसके लिए श्रम अदालत का दरवाज़ा खटखटाया, लेकिन वहाँ भी क्या मिला? न्याय के तथाकथित घर में उन्हें अभी तक सिर्फ़ धक्के ही मिले हैं। इन बीस मज़दूरों का ग्रेच्युटी का केस चलते हुए दस साल बीत चुके हैं, लेकिन अभी तक मामला निपटता नज़र नहीं आ रहा। टूटी कारख़ाना बंद होने के बाद अजय ने एक और कारख़ाने में काम करना शुरू किया था, ओवरटाइम लगाकर भी उसके कुल 12,000 रुपए ही बनते थे, जो चंडीगढ़ में तयशुदा न्यूनतम वेतन से भी कम है। उम्र के पचासवें साल में पहुँचकर उसकी हालत ऐसी भी नहीं कि बेहतर वेतन की खोज में काम ढूँढ़ता फिरे। तीन महीने पहले इस कारख़ाने के मालिक के दो भाइयों में आपस में झगड़ा हो गया और एक ने अलग कारख़ाना नज़दीक के क़स्बे बरवाले में लगा लिया। अब यह पहले वाला मालिक इस झगड़े के कारण बाँटी गई कंपनी का बहाना बनाकर डेढ़ महीने से मज़दूरों का वेतन दाबे बैठा है। बकाए के इंतज़ार में बैठे अजय जैसे अन्य मज़दूरों के पास इसी मालिक के पास काम करने के अलावा कोई चारा भी नहीं है। उसका तो यह भी कहना था कि चूँकि वह यहाँ अकेला है, परिवार गाँव में है, अगर थोड़ी देर और पैसे ना मिले, तो वे गाँव चले जाएँगे, क्योंकि अब इस उम्र में, बिना वेतन के इंतज़ार नहीं किया जा सकता।

दूसरा मामला उसी बेड़े में रहने वाले एक और परिवार का है, जो हरदोई (यू.पी.) से यहाँ काम करने के लिए काफ़ी साल पहले आया था। इस घर में अकेली औरत थी, पति कहीं बाहर कुछ सामान लेने गया था। इस औरत के पति ने काफ़ी समय भट्ठे पर काम किया था, लेकिन अब तबीयत ख़राब रहने के कारण शरीर में उतनी ताक़त ही नहीं रही थी। इसलिए घर का ख़र्चा औरत और उसका बेटा चलाते थे। औरत यहाँ की मशहूर दारू की कंपनी में सात हज़ार पर काम करती थी, जो चंडीगढ़ में न्यूनतम वेतन 12,600 रुपए महीना से कहीं ज़्यादा कम है। लेकिन लगभग तीन महीने पहले ठेकेदार उनके बनते पैसे लेकर भाग गया और इस औरत का भी छह हज़ार रुपया इसमें डूब गया। ठेकेदारी होने के कारण मालिक ने ख़ुद को बरी कर लिया कि ठेकेदार से ही बात करो, उसने ही तुम्हें काम पर रखा था। एक-दो बार कुछ मज़दूर इकट्ठे होकर मालिक के पास दोबारा भी गए, लेकिन उसका यही जवाब सुनकर सभी ने कोई और काम ढूँढ़ना शुरू कर दिया और पैसा मिलने

**(अगले पन्ने पर जारी)**

(पिछले पन्ने से आगे)

की आस छोड़ दी। अब यह औरत सिर्फ़ 2,000 रुपए पर किसी कोठी में झाड़ू-पोछे का काम करती है और बेटा मुश्किल से 13-14 साल का, सातवीं कक्षा तक पढ़ा हुआ, अब चंडीगढ़ में किसी ढाबे पर काम करने के लिए मज़बूर है। उनके घर में किसी को पढ़ना ही नहीं आता था, बेटा जो कहने को तो सातवीं पास है, वो भी मुश्किल से ही अक्षर जोड़ता था। ढाबे पर वह सुबह 7 बजे से रात 11 बजे तक काम करता है, जिसके बदले में उसे सिर्फ़ 8,000 रुपए मिलते हैं। यानी जिन ढाबों, रेस्तराँ में जाकर लोग चाव से खाना खाते हैं, वहाँ बहुत से मज़दूरों की हालत इतनी भयानक ही होती है। ये ढाबे, होटल काम की हालतों के अनुपात में मज़दूरों की भयंकर लूट करते हैं, लेकिन कभी किसी सरकारी महक़मे की इधर नज़र नहीं गई कि कैसे सभी नियम-कायदे की ये धज्जियाँ उड़ाते हैं।

ये दोनों ही मामले यही स्पष्ट करते थे कि मज़दूरों के संगठन की क्यों ज़रूरत है। क्योंकि ये ऐसे मामले थे, जहाँ मज़दूरों का जायज़ पैसा ही मार लिया गया था। मज़दूरों द्वारा लंबे संघर्षों से हासिल किए गए क़ानूनी अधिकार भी उन्हें अगर नहीं मिल रहे, तो इसका कारण उनके संगठन की कमी ही थी। ये कोई वेतन बढ़ाने या नौकरी पक्की कराने जैसा मामला भी नहीं है कि जहाँ कोई नई माँग की जा रही हो, बल्कि यह तो तयशुदा अधिकार लेने का ही मामला था। इसलिए आज मज़दूरों को अपने संगठन, अपने क्रांतिकारी संगठन की फ़ौरी ज़रूरत है, जो ना सिर्फ़ इन हासिल किए गए क़ानूनी अधिकारों को लागू करवा सके, बल्कि मज़दूरों के लिए इन लुटेरी सरकारों से अपने और भी अधिकार छीन सके।

**– मानव**, चंडीगढ़

# भाजपा सरकार में पूँजीपतियों की ऐश, ना चुकाने योग्य क़र्ज़ में प्रतिदिन 100 करोड़ का इज़ाफ़ा

इसी साल जुलाई महीने में मोदी ने अपने एक भाषण में कहा था कि उसकी सरकार में सरकारी बैंकों की हालत में काफ़ी सुधार हुआ है। मोदी ने कहा कि कांग्रेस के राज के दौरान कुछ ख़ास और ताक़तवर लोगों को सिर्फ़ एक फ़ोन करके क़र्ज़ मिल जाते थे, जिसके चलते सरकारी बैंक घाटे में चलते थे और भाजपा की सरकार बनने के बाद अब सरकारी बैंकों की व्यवस्था में बहुत सुधार हुआ है। अब यह तो पता लग चुका है कि झूठ बोलने में मोदी का कोई मुक़ाबला नहीं। यह भाषण भी खोखली जुमलेबाज़ी के अलावा और कुछ भी नहीं था। उल्टा सच तो यह है कि मोदी के राज में सरकारी बैंकों की हालत बद से बदतर हो गई है। एक रिपोर्ट के अनुसार साल 2019 से ना-वापसी वाले क़र्ज़ हर दिन 100 करोड़ रुपए की रफ़्तार से बढ़े हैं। अगर साल 2019 से लेकर अब तक देखा जाए तो इस रक़म में 1.2 लाख करोड़ रुपए का इज़ाफ़ा हुआ है। इस रक़म का बड़ा हिस्सा (77.5%) सरकारी बैंकों से लिए गए क़र्ज़ का बनता है। ये ऐसे क़र्ज़ हैं, जो पूँजीपतियों ने चुकाने की क्षमता होने के बावजूद भी वापिस नहीं किए हैं। इसके बाद भी मोदी सरकार ने इन पर कोई ख़ास कार्रवाई नहीं की। यह रक़म इससे ज़्यादा भी हो सकती है, क्योंकि इस रिपोर्ट के आने तक एक सरकारी बैंक ने अपने ना-वापस किए गए क़र्ज़ की जानकारी को साझा नहीं किया था। इन तथ्यों से यह स्पष्ट रूप में देखा जा सकता है कि कैसे मोदी सरकार जनता के पैसे को अपने मालिक पूँजीपतियों को लुटा रही है।

यहाँ बताने वाली बात यह है कि यह रक़म ऐसे पूँजीपतियों पर बकाया है, जो क़र्ज़ लौटाने की क्षमता के बावजूद भी बैंक को क़र्ज़ नहीं लौटाते। इन्हें बैंक जान-बूझकर डिफ़ॉल्टर वालों की सूची में रखते हैं। भारतीय रिज़र्व बैंक की नई हिदायतों के मुताबिक़ किसी भी बैंक को किसी क़र्ज़ के ना-वापसी योग्य बनने के छह महीनों में ऐसे व्यक्तियों को जानबूझकर डिफ़ॉल्टर घोषित करना ज़रूरी है, पर इसके बाद की क़ानूनी कार्रवाई में ऐसे पूँजीपतियों को खुली छूटें दी हुई हैं। रिज़र्व बैंक के क़ानून के मुताबिक़ बैंक अगर चाहे तो वे ऐसे भगोड़ों से राज़ीनामा कर सकते हैं, जिसमें पूँजीपति कुछ रक़म देकर क़ानूनी कार्रवाई से बच सकते हैं और बाक़ी रक़म बैंक माफ़ कर देगा। सिर्फ़ एक साल बाद पूँजीपति फिर से क़र्ज़ लेने के योग्य भी हो जाएँगे। है ना कमाल की बात, पहले ठगी करो, फिर कुछ रक़म देकर दोबारा ठगी करने के लिए आज़ाद हो जाओ। यह फ़ैसला बिना शक मोदी सरकार ने अपने पूँजीपति मालिकों को और अधिक लूट करने के योग्य बनाने के इरादे से लिया था। ग़ौरतलब है कि सरकारी बैंकों के कर्मचारियों की यूनियनों ने इस क़ानून का काफ़ी विरोध भी किया था, पर फिर भी इसे वापिस नहीं लिया गया।

मोदी सरकार के हुकूमत में आने के बाद ऐसे पूँजीपतियों की संख्या में काफ़ी इज़ाफ़ा हुआ है, जो सरकारी बैंकों से क़र्ज़ लेकर वापिस नहीं लौटाते। इस सूची में सबसे बड़ा नाम गुजरात की गीतांजलि ज्वेलर्स कंपनी के मालिक मेहुल चौकसी का है, जो पंजाब नेशनल बैंक के 8,378 करोड़ रुपए लेकर भाग गया। भारत सरकार अभी भी इस भगोड़े को जेल में डालने और जनता के पैसे वसूलने में असफल रही है। इस सूची में मोदी के कई यार-दोस्त शामिल हैं – जिनमें नीरव मोदी, विजय माल्या, जतिन मेहता, ललित मोदी आदि हैं। केंद्रीय वित्त मंत्रालय के मुताबिक़ चोटी के 50 क़र्ज़ा डिफ़ॉल्टरों पर बैंकों और वित्तीय संस्थानों का 87,295 करोड़ रुपया बकाया है। भगोड़े मेहुल चौकसी की कंपनी गीतांजलि जेम्स 8,738 करोड़ की सबसे बड़ी डिफ़ॉल्टर है, इसके बाद ऐरा इंफ्रा इंजीनियरिंग लिमिटेड 5,750 करोड़, आरईआई एग्रो 5,148 करोड़ रुपए, एबीजी शिपयार्ड लिमिटेड 4,774 करोड़ रुपए और क्योन्कास्ट स्टील एंड पावर लिमिटेड 3,911 करोड़ की देनदार है। इन सब देनदारों ने पैसे भी सरकारी बैंकों के ही मारे हैं। कुल ना-वापसी वाले क़र्ज़ का सिर्फ़ 23% हिस्सा ही निजी बैंकों और वित्तीय संस्थाओं का है।

इन तथ्यों से यह पता चलता है कि कैसे मोदी सरकार खुलेआम पूँजीपतियों पर मेहरबान है। जब ये चोर यह पैसा नहीं लौटाते, तो सरकार वफ़ादारी निभाते हुए इस पैसे को माफ़ कर देती है। संसद के मानसून सत्र में राज्य मंत्री भगवत कराड द्वारा राज्य सभा में दिए गए एक लिखित जवाब से पता लगा कि व्यापारिक बैंकों ने "पिछले 5 वित्तीय वर्षों के दौरान 10,57,326 करोड़ रुपए की कुल रक़म को माफ़ किया है।" यह पैसा किसका है? क्या सरकार अपने घर से यह पैसा लेकर आती है? नहीं, यह सब पैसा भारत की जनता का है। इन क़र्ज़ों का बोझ आम लोगों पर डाला जाता है। बड़े मुनाफ़े पूँजीपतियों के हिस्से आते हैं, पर घाटों का बोझ आम मेहनतकश जनता को सहना पड़ता है। सरकार अपने घाटे की पूर्ति लोगों पर प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष टैक्स बढ़ाकर कर लेती है। महँगाई, ग़रीबी की मार लोगों को झेलनी पड़ती है। यही पूँजीवादी व्यवस्था का असली चेहरा है, लोगों के दम पर जोंकों की ऐश। आज आम मेहनतकश जनता को यह समझने की ज़रूरत है कि इस व्यवस्था में सरकारें पूँजीपतियों की मैनेजिंग कमेटियों की भूमिका निभाती हैं, जिनका मुख्य काम इन लुटेरों के मुनाफ़े को सुनिश्चित करना ही होता है। मेहनतकश जनता को लूट से मुक्ति किसी पूँजीवादी सरकार से नहीं, बल्कि अपने संघर्षों से इस लूट आधारित सामाजिक व्यवस्था को ख़त्म करके ही मिलेगी।

**– गुरप्रीत अमृतसर**

## उत्तरकाशी सुरंग हादसा - मोदी सरकार की प्रकृति विरोधी नीतियों का नतीजा

(पन्ना 1 से आगे)

की संभावना में मज़दूरों के निकलने के लिए बाहर जाने का एक इमरजेंसी रास्ता ज़रूर होना चाहिए, पर ठेका कंपनी ने जल्द-से-जल्द काम पूरा करने और अपने ख़र्चे घटाने के चक्कर में सुरक्षा हिदायतों का पालन नहीं किया। इसके अलावा यह सुरंग जिस पहाड़ी में बनाई जा रही है, वह बहुत ही कमज़ोर है और भू-विज्ञानियों के मुताबिक़ खुदाई करने योग्य बिल्कुल भी नहीं है। मज़दूरों के लिए ज़रूरी सुरक्षा औज़ारों का भी कोई ख़ास प्रबंध नहीं था। स्पष्ट है कि कंपनी ने अपने मुनाफ़े बढ़ाने के लिए मज़दूरों की ज़िंदगी को ख़तरे में डाला और सरकार ने इस मामले से आँखें मींचकर इन लुटेरों का पूरा साथ दिया। इस दुर्घटना के लिए पूरी तरह से भारत सरकार और सड़क निर्माण कर रही कंपनी ज़िम्मेदार है। सुरंग बनाने और इस हादसे के लिए ज़िम्मेदार कंपनी पर सख़्त क़ानूनी कार्यवाही की जानी चाहिए। पहाड़ों में, संवेदनशील इलाक़ों में ऐसी सड़कें और सुरंगें बनाने पर पूरी तरह रोक लगाई जानी चाहिए। यह दुर्घटना पूँजीवादी व्यवस्था के क़ुदरत और मज़दूर विरोधी चरित्र को नंगा करती है। पूँजीवादी व्यवस्था मज़दूर विरोधी तो है ही, पर इसके साथ ही यह क़ुदरत को भी मुनाफ़े की हवस में तबाह करने से पीछे नहीं हटती। वातावरण की तबाही के आधार पर यह विकास मनुष्यों और क़ुदरत दोनों के लिए एक बड़ा ख़तरा बन चुका है। इन तबाहियों से मुक्ति का केवल एक ही रास्ता है – मनुष्य की ज़रूरतों और क़ुदरत को ध्यान में रखकर, एक केंद्रीय योजनाबद्ध ढंग से चलने वाला समाजवादी व्यवस्था। समाजवादी व्यवस्था में ही मनुष्य और क़ुदरत का एक सेहतमंद रिश्ता क़ायम हो सकता है।

# औरत-मर्द की "बराबरी" वाली पूँजीवादी व्यवस्था में औरतों के साथ होता काम-आधारित भेदभाव

नवंबर में 'अंतरराष्ट्रीय श्रम संगठन' द्वारा एक रिपोर्ट पेश की गई, जिसमें विश्व श्रम शक्ति में लैंगिक असमानता और अलग-अलग क्षेत्रों में काम कर रही औरतों की समीक्षा की गई है। इस रिपोर्ट से यह और भी स्पष्ट होता है कि "बराबरी" के नारे से विश्व स्तर पर स्थापित हुई पूँजीवादी ढाँचे में आज हर कार्य क्षेत्र में कैसे औरतों के साथ भेदभाव होता है।

आँकड़ों के मुताबिक़, इस समय विश्व स्तर पर कुल कामगारों में औरतों की संख्या बहुत कम है। केवल 39.5 प्रतिशत औरतें ही काम पर लगी हुई हैं। उत्तरी अमेरिका में यह आँकड़ा 30 प्रतिशत और दक्षिण एशिया में 34 प्रतिशत है। अगर हम भारत की बात करें, तो हालाँकि रिपोर्ट 37.7 प्रतिशत औरतों के काम पर लगे होने की बात करती है, लेकिन इससे पहले जारी हुई अन्य रिपोर्टों के मुताबिक़, भारत में यह आँकड़ा बहुत कम है। कुल श्रम शक्ति में औरतों की संख्या का कम होना दर्शाता है कि कैसे बहुसंख्यक औरतों को आज इक्कीसवीं सदी में भी घरों की रसोई तक ही सीमित रखा गया है।

कुल कामगारों में औरतों की संख्या कम होने के कई कारण हैं। पहला, पूँजीवादी व्यवस्था सस्ती से सस्ती श्रम शक्ति चाहती है, ताकि इसका शोषण करके अधिक से अधिक मुनाफ़ा कमा सके। इसीलिए इस व्यवस्था में औरतों, बच्चों, प्रवासी मज़दूरों आदि की भयंकर लूट होती है और अक्सर उन्हें क़ानून द्वारा निर्धारित नियमों के तहत मज़दूरी और अन्य सुविधाएँ भी नहीं मिलतीं। भारत में भी औरतों, बाल मज़दूरों और प्रवासी मज़दूरों के श्रम को पूँजीपतियों द्वारा लूटा जाता है। लेकिन दूसरी ओर, अनुभवहीन या कम अनुभवी होने के कारण आर्थिक मंदी या सुस्ती का सबसे पहला शिकार भी अक्सर औरत मज़दूर ही बनती हैं। कोरोना काल के बाद स्पष्ट देखा जा सकता है कि बेरोज़गारी की सबसे ज़्यादा मार औरत मज़दूरों पर पड़ी है और वह श्रम बाज़ार से बाहर कर दी गई हैं। लेकिन ऐसा नहीं है कि औरतें इस वजह से बेकार हो गई हैं, बल्कि औरतों और मर्दों के बीच जो काम का बँटवारा है, उसके कारण सामाजिक उत्पादन में शामिल औरतें अपनी श्रम शक्ति का बड़ा हिस्सा ऐसे कामों में ख़र्च करती हैं, जिसके एवज़ में उन्हें कोई भुगतान नहीं किया जाता। घर में खाना बनाना, बच्चों, बुज़ुर्गों की देखभाल करना और घर सँभालना आदि आज भी उनका मुख्य काम माना जाता है। एक सर्वेक्षण के मुताबिक़, अगर इस काम को भी अर्थव्यवस्था में शामिल कर लिया जाए तो यह कुल घरेलू उत्पादन का लगभग 40% बनेगा। ज़्यादातर औरतों के लिए ये काम का बोझ वे बेड़ियाँ हैं, जो उन्हें घर की चारदीवारी के अंदर बंद करके सामाजिक उत्पादन में हिस्सा लेने से रोकती हैं।

औरतों की श्रम शक्ति में घट रही हिस्सेदारी का दूसरा कारण आज के पूँजीवादी भारत में आज भी औरतों के प्रति सामंती मानसिकता का गहराई तक बैठे होना है। बेटी घर की इज्ज़त होती है, बाहर काम करने वाली औरतें चरित्रहीन बन जाती हैं या बिगड़ जाती हैं, जैसे विचार आज भी बड़ी गिनती में आबादी के मनों में घर किए बैठे हैं।

तीसरा कारण यह भी है कि इस समाज में क़दम-क़दम पर औरतों को भद्दी टिप्पणियों, छेड़छाड़ और शोषण का सामना करना पड़ता है, जिसके कारण बहुत सारी औरतें बहुत सोच-विचार करके ही कहीं काम करने के लिए तैयार होती हैं और काम करने के लिए कुछ ख़ास पेशे ही चुनती हैं। ये सारी बातें केवल भारत में ही नहीं, बल्कि छोटे या बड़े रूप में विश्व के लगभग सभी मुल्क़ों में ही देखने को मिलती हैं।

औरतों की कम हुई हिस्सेदारी का चौथा कारण कोरोना काल के बाद दसियों लाख की गिनती में लड़कियों की पढ़ाई छुड़वाकर उनका जबरन विवाह किया जाना भी है। आँकड़े बताते हैं कि लगभग 37% लड़कियाँ कोरोना काल के बाद कभी भी वापस स्कूल नहीं गईं। ज़ाहिर है कि इनमें से बहुत-सी लड़कियों को आगे पढ़ने या रोज़गार करने का मौक़ा भी नहीं मिला और उनको ब्याह दिया गया।

कुल श्रम शक्ति में कम हिस्सेदारी के अलावा इस रिपोर्ट के आँकड़े यह भी दिखाते हैं कि औरतों की ज़्यादातर हिस्सेदारी कुछ ख़ास क्षेत्र के कामों में होती है। उदाहरण के तौर पर स्वास्थ्य और बच्चों की देखभाल जैसे काम, अध्यापन, दफ़्तरी कामकाज, नर्सिंग आदि में औरतों की भूमिका 90% के लगभग है। अगर हम विज्ञान, तकनीक, इंजीनियरिंग, गणित आदि की बात करें, तो यहाँ औरतों की गिनती नाममात्र है। केवल 38 फ़ीसदी औरतें कंप्यूटर क्षेत्र में काम कर रही हैं और केवल 24 फ़ीसदी लड़कियाँ इंजीनियरिंग क्षेत्र से जुड़ी हुई हैं। इसका कारण यही है कि इन तकनीकी विषयों के लिए ख़ास महारत चाहिए होती है, जिसके लिए अक्सर पढ़ाई की मियाद भी लंबी होती है। लेकिन हमारे समाज में औरतों पर रोज़गार के अलावा घर की ज़िम्मेदारी, बच्चों के पालन-पोषण की ज़िम्मेदारी आदि भी डाली जाती है। ये सब अतिरिक्त ज़िम्मेदारियाँ निभाते हुए उनके लिए ऐसी महारत और लंबी अवधि वाली पढ़ाई करना मुश्किल हो जाता है। दूसरा, शिक्षा के निजीकरण के कारण इन क्षेत्रों में काम करने के लिए जो शिक्षा चाहिए, वह बहुत महँगी है। भारत जैसे पिछड़े मुल्क़ों में, जहाँ लड़कियों को जल्दी ब्याह देने की प्रथा है, जहाँ सोच यह है कि लड़की ने ब्याह करके ससुराल जाना है, जहाँ उसकी कमाई भी साथ ही जाएगी, जबकि लड़के की कमाई घर में ही रहेगी, इसलिए ऐसी महँगी पढ़ाई आमतौर पर लड़कों को ही ज़्यादा करवाई जाती है। इस करके भी ऐसी शिक्षा तक और नतीजतन इन क्षेत्रों तक औरतों की पहुँच सिमटकर रह जाती है। अगर घरेलू काम का समाजीकरण कर दिया जाए, बढ़िया बालघर, बेहतरीन मैसों आदि के ज़रिए घर की ज़िम्मेदारियों को अधिक से अधिक समाज की ज़िम्मेदारियाँ बना दिया जाए और हर स्तर की पढ़ाई मुफ़्त हो तो लाज़िमी ही औरतों को भी पढ़ने-लिखने और काम करने के लिए बराबर का माहौल मिलेगा और अलग-अलग कामों की जो बाँट इस पूँजीवादी व्यवस्था ने बनाकर रखी है, यह भी ख़त्म होगी। समाजवादी सोवियत यूनियन और समाजवादी चीन की उन्नत मिसालें हमारे सामने हैं, जहाँ समाजवादी सरकार ने शिक्षा मुफ़्त करके, घरेलू कामों का बड़े स्तर पर समाजीकरण करके औरतों को सही अर्थों में चूल्हे-चौके और अन्य ग़ैर-ज़रूरी ज़िम्मेदारियों से मुक्त कर दिया था, जिसके कारण औरतें हर क्षेत्र में आगे बढ़ी थीं।

तनख़्वाह के अंतर के अलावा, औरतों की स्थिति काम के क्षेत्र की गुणवत्ता के मामले में भी भेदभाव वाली है। संगठित क्षेत्र के मुक़ाबले ग़ैर-संगठित क्षेत्र में औरतों की हिस्सेदारी अधिक है। संगठित क्षेत्र को आमतौर पर अधिक टिकाऊ रोज़गार माना जाता है, जहाँ मज़दूरों को एक हद तक थोड़ी-बहुत सुविधाएँ भी हासिल हो जाती हैं। जबकि ग़ैर-संगठित क्षेत्र में मज़दूर आमतौर पर बिना किसी रोज़गार सुरक्षा के, बिना किसी सुविधा के काम करते हैं। विश्व स्तर पर 58 फ़ीसदी औरतें ग़ैर-संगठित क्षेत्र में काम करती हैं। इस मामले में भी औरतों की हालत मर्द मज़दूरों से अधिक बदतर है। पूँजीपतियों द्वारा औरतों की सस्ती श्रम शक्ति को असुरक्षित ग़ैर-संगठित कामों के ज़रिए ज़्यादा से ज़्यादा निचोड़ा जाता है। अगर हम भारत की बात करें, तो आँकड़ों के मुताबिक़ लॉकडाउन के बाद संगठित क्षेत्र की तुलना में औरतों की हिस्सेदारी ग़ैर-संगठित क्षेत्र में बढ़ी है। साल 2018-19 में कुल कामगार औरतों का लगभग 59 फ़ीसदी (39 फ़ीसदी कृषि और 20 फ़ीसदी घरेलू काम-धंधे में) ग़ैर-संगठित क्षेत्र के धंधों में लगा हुआ था, जो 2021 में बढ़कर 67% हो गया। इस ग़ैर-संगठित क्षेत्र में काम करने वाली औरतें अक्सर ही आर्थिक लूट के साथ-साथ शारीरिक शोषण, गाली-गलौच आदि का भी शिकार होती हैं। औरत मज़दूरों से अक्सर काम तो मर्द मज़दूरों के बराबर लिया जाता है, लेकिन तनख़्वाह उनके मुक़ाबले में बहुत कम दी जाती है।

विश्व और देश स्तर पर बहुत सारे पूँजीवादी चिंतक इस ग़ैर-बराबरी को ख़त्म करने के लिए अनेकों नुस्खे बताते हैं, लेकिन सच्चाई यह है कि निजी जायदाद पर टिकी इस पूँजीवादी व्यवस्था के रहते औरत-मर्द के दरमियान मौजूद इस श्रम की बाँट को ख़त्म नहीं किया जा सकता। सिर्फ़ निजी जायदाद को ख़ात्मे के साथ, घरेलू कामों के समाजीकरण से ही औरतों को अतिरिक्त ज़िम्मेदारियों से मुक्त किया जा सकता है और उनको सही मायनों में मर्दों के बराबर मौक़े उपलब्ध करवाए जा सकते हैं। इसलिए इस लुटेरे ढाँचे को नेस्तानाबूत किए बिना औरतों की आज़ादी संभव नहीं।

**– पुष्पिंदर**

## सरकारी बैंकों का निजीकरण

**(पन्ना 8 से आगे)**

की, जिससे सरकारी बैंकों के मुलाज़िमों पर काम का बोझ बहुत बढ़ा है। साल 2014 से 2022 के दौरान सरकारी बैंकों में 89,000 मुलाज़िमों की छँटनी हुई है।

इन तथ्यों से स्पष्ट है कि मोदी सरकार अपने हुक्मरानों की सेवा के लिए एक तरफ़ तो अच्छे, सुरक्षित रोज़गार की इच्छा रखने वाली नौजवान पीढ़ी, जनता को रोज़गार से वंचित रख रही है और दूसरी तरफ़ सार्वजनिक क्षेत्र में रोज़गार प्राप्त लोगों पर काम का बोझ बढ़ाकर उनका कचूमर निकालने पर तुली हुई है। मोदी हुकूमत जनता के सामने यह बात ज़्यादा साफ़ करती जा रही है कि इस पूँजीवादी व्यवस्था के अंदर अच्छे रोज़गार जैसे बुनियादी अधिकारों के लिए जनता को केवल योग्यता परीक्षाएँ नहीं, बल्कि सरकारों के विरुद्ध साझे संघर्षों की परीक्षाओं में से भी लाज़िमी ही गुज़रना पड़ेगा।

**– रतन**

# मार्शल मशीन्स लिमिटेड के मज़दूरों का संघर्ष जारी

लुधियाणा के फ़ोकल प्वाइंट स्थित सी.एन.सी. टर्निंग मशीनें बनाने वाली कंपनी मार्शल मशीन्स लिमिटेड में मज़दूर 9 नवंबर से हड़ताल पर हैं, जो रिपोर्ट लिखे जाने तक जारी है। हड़ताल का कारण यह है कि मालिकों ने फ़ैक्टरी में मज़दूरों की यूनियन के अध्यक्ष, उपाध्यक्ष, खज़ानची, प्रेस सचिव और एक जुझारू सदस्य को काम से निकाल दिया है। संघर्षरत मज़दूरों की माँग है कि बदलाखोरी के लिए काम से निकाले गए इन नेताओं को नौकरी पर बहाल किया जाए। इसके साथ ही माँग है कि पिछले 7 महीनों से रोकी गई वेतन बढ़ौतरी लागू की जाए, बोनस दिया जाए, पक्की हाज़िरी लगाई जाए और अन्य मसले हल किए जाएँ।

इस साल फ़रवरी में मज़दूरों ने कारख़ाना मज़दूर यूनियन के झंडे तले एकजुट होकर मालिकों के ख़िलाफ़ अपने अधिकारों के लिए संघर्ष शुरू किया था, क्योंकि मज़दूरों को दो-दो, तीन-तीन महीने का वेतन देरी से दिया जाता था। इस संघर्ष की बदौलत अब हर महीने वेतन 7 से 10 तारीख़ के बीच में और एडवांस 25 तारीख़ के करीब मिल जाता है। कंपनी मालिक डेढ़ साल से मज़दूरों के वेतन से ई.पी.एफ़. का पैसा काट तो रहा था, लेकिन सरकारी ख़ज़ाने में जमा नहीं करवा रहा था, बल्कि ख़ुद ही दबाकर रख रहा था। मज़दूरों की एकता ने उसे मज़दूरों और मालिक दोनों हिस्सों का ई.पी.एफ़. जमा करवाने के लिए मज़बूर कर दिया है। ई.पी.एफ़. और ई.एस.आई. सुविधा से वंचित रखे गए अनेकों मज़दूरों को यह सुविधा हासिल हुई है। वेतन-स्लिप की एक महत्वपूर्ण माँग मनवाई जा चुकी है। मार्शल मशीन्स मज़दूर यूनियन, पंजाब के नाम पर यूनियन रजिस्टर करवाई गई है। अन्य अनेक मसलों के लिए लगातार संघर्ष जारी है। इसलिए मालिकों द्वारा यूनियन तोड़ने के इरादे से 8 नवंबर को 5 मज़दूर नेताओं को काम से निकाल दिया गया ओर 15 अन्य मज़दूरों को दोष-पत्र जारी किए गए हैं।

मज़दूर नेताओं को निकालने के इस ग़ैर-क़ानूनी और नाजायज़ फ़ैसले के ख़िलाफ़ बाक़ी मज़दूरों ने संगठित हड़ताल के ज़रिए एकता का सबूत दिया है। इन नेताओं को दोबारा बहाल करवाने, सारे नोटिस वापिस करवाने, वेतन बढ़ौतरी लागू करवाने और बोनस के भुगतान जैसी माँगें मनवाने के लिए मज़दूरों द्वारा हड़ताल करके श्रम विभाग कार्यालय के सामने लगातार धरना दिया जा रहा है, क्योंकि इन फ़ैक्टरियों में मज़दूरों के क़ानूनी अधिकार लागू करवाना इसी विभाग का काम है। इसके साथ ही मज़दूरों द्वारा 29 नवंबर और 2 दिसंबर को पंजाब सरकार के प्रतिनिधि और लुधियाणा पूर्वी के विधायक दलजीत सिंह गरेवाल भोला के दफ़्तर के सामने भी तीखे रोष-प्रदर्शन किए गए हैं। आम आदमी पार्टी के एक और विधायक हरदीप सिंह मुंडियाँ को भी मज़दूरों ने माँग-पत्र सौंपा है।

श्रम विभाग और पंजाब सरकार द्वारा इसके बावजूद भी मज़दूरों का मसला हल करवाने और मालिक पर कार्रवाई करने में ढील दिखाई जा रही है। उनके इस अमल से मज़दूरों ने जाना है कि श्रम विभाग, ज़िला प्रशासन और पंजाब सरकार आदि सभी मालिकों के पक्ष में खड़े हैं और मज़दूरों से इनका कोई सरोकार नहीं है। मज़दूर अपने संगठित संघर्षों के बल पर ही इस पूँजीवाद-परस्त व्यवस्था में सरकार और प्रशासन को अपने पक्ष में सुनवाई करने के लिए मज़बूर कर सकते हैं। करीब एक महीने से चल रहे इस संघर्ष की बदौलत फ़ैक्टरी मालिक दवाब में है, लेकिन मज़दूरों की सभी माँगें मानने के लिए तैयार नहीं है। मज़दूरों ने भी फ़ैसला किया है कि वह किसी भी हालत में मालिक के आगे नहीं झुकेंगे और अगर पंजाब सरकार और श्रम विभाग उनका मसला हल करवाने में नाकाम रहे, तो सभी मज़दूर फ़ैक्टरी से अपनी ग्रेचुइटी, बकाया वेतन, बोनस, कमाई वाली छुट्टियाँ आदि सारा हिसाब लेकन कंपनी छोड़ देंगे, लेकिन झुककर उस मालिक के लिए काम नहीं करने जाएँगे।

पंजाब के औद्योगिक शहर लुधियाणा में हज़ारों छोटे और बड़े उद्योग हैं, जिनमें लाखों मज़दूर काम करते हैं। लेकिन यहाँ के मज़दूरों की बहुसंख्या संगठित नहीं है और अपने अधिकारों के लिए संघर्ष करने की बजाए चुपचाप सब बर्दाशत करती रहती है। इसीलिए यहाँ के मालिकों द्वारा मज़दूरों की लूट और उनके अधिकार छीनने का अमल बहुत तीखा है। बहुसंख्या फ़ैक्टरियों में श्रम क़ानून लागू नहीं हैं। मालिक द्वारा समय पर वेतन ना देना, बिना वेतन दिए काम से निकालना और मज़दूरों की मारपीट करना आम बात है। ऐसे महौल में किसी भी फ़ैक्टरी में मज़दूरों का संगठित होना और अपने अधिकारों के लिए संघर्ष करना बहुत ज़रूरी है। जुझारू, ईमानदार और समझदार नेतृत्व में इलाक़े में मज़दूरों की यूनियन बनने की यह शुरुआत अन्य कंपनियों के मज़दूरों के लिए भी प्रेरणा स्रोत है।

7 दिसंबर 2023

# सरकारी बैंकों का निजीकरण: भारत में अच्छे-सुरक्षित रोज़गार का सिकुड़ता दायरा

निर्मला सीतारमण ने 2022 के वित्तीय साल का बजट पेश करते हुए कहा था कि भारतीय अर्थव्यवस्था का एक हिस्सा 1991 मार्का सुधारों से अछूता है, वह है सरकारी यानी सार्वजनिक बैंकिंग क्षेत्र, और इसी बजट भाषण में वित्तमंत्री ने सार्वजनिक क्षेत्र के दो बैंकों का निजीकरण करने का ऐलान किया था। इसके लिए बहाने सरकारी बैंकों के ख़राब प्रदर्शन के बनाए जाते हैं। इस ख़राब प्रदर्शन के लिए सरकार कैसे ज़िम्मेदार है, इस बात पर ना तो निर्मला सीतारमन ने कुछ कहा और ना ही भाजपा की यूनियन सरकार का कोई आधिकारिक वक्ता ही इस मुद्दे पर कोई बात करता है। बस सरकारी बैंकों के ख़राब प्रदर्शन की रट लगाकर इनके निजीकरण की ओर लगातार क़दम बढ़ाए जा रहे हैं।

सरकारी बैंकिंग क्षेत्र की अगर बात करें तो इस समय देश में 12 सरकारी बैंक हैं। 2017 से पहले इन सरकारी बैंकों की गिनती 27 होती थी। भारत सरकार ने 2017 से सरकारी बैंकों के विलय की नीति अपनाते हुए 2017 से 2023 तक कुल सरकारी बैंकों की गिनती 27 से 13 कर दी। साल 2017 में स्टेट बैंक ऑफ़ इंडिया में 5 इससे जुड़े बैंकों का विलय कर दिया था। फिर 2021 में 10 सरकारी बैंकों को चार बैंकों में मिला दिया था।

कुल अर्थव्यवस्था में ही 1991 के बाद निजीकरण की नीतियों को तेज़ किया गया है और सार्वजनिक क्षेत्र के बड़े हिस्से को कौड़ियों के दाम पूँजीपतियों के हवाले किया जा रहा है। इस प्रक्रिया को ही मोदी हुकूमत ने 2014 से पहले से ज़्यादा तेज़ किया है। निजीकरण द्वारा पूँजीपतियों के मुनाफ़े बढ़ाने की इसी नीति के तहत भारत की यूनियन सरकार सरकारी बैंकिंग क्षेत्र को भी निजी हाथों में सौंपने के लिए तत्पर है।

इस समय भारत में सार्वजनिक क्षेत्र के बैंक निजी बैंकों के मुक़ाबले कहीं बड़ी आबादी तक बैंकिंग सेवाएँ पहुँचाते हैं। सार्वजनिक क्षेत्र के बैंक 36 करोड़ ग्राहकों को सेवाएँ देते हैं, जबकि इसके मुक़ाबले निजी बैंक केवल 1.3 करोड़ लोगों को ही सेवाएँ देते हैं। इस समय सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों के आगे सबसे बड़ी समस्या बट्टे खाते में डाली गई पूँजी की है। देश के कुल 20 बैंक हैं, जिनकी पूँजी बट्टे खाते में डाली गई है। मोदी सरकार के राज में सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों के 12 लाख करोड़ के क़र्ज़े बट्टे खाते में डाले जा चुके हैं, जिसका बड़ा हिस्सा भाजपा द्वारा अपने हुक्मरानों, इजारेदार पूँजीपतियों, की सेवा का ही नतीजा है।

अभी पिछले दिनों ही सरकारी बैंकों की हालत पर एक रिपोर्ट आई है, जिससे पता चलता है कि सार्वजनिक बैंकों को सरकार ने डूबने के लिए छोड़ दिया है, ताकि आगे आने वाले समय में सरकार ख़राब प्रदर्शन का बहाना बनाकर इनका निजीकरण कर सके। इन बैंकों का ख़राब प्रदर्शन का एक बड़ा कारण सरकार द्वारा इन बैंकों में ज़रूरत से कहीं कम मुलाज़िमों की भर्ती करना है। इससे इन बैंकों में लगे मुलाज़िमों पर काम का बोझ कहीं अधिक बढ़ा दिया जाता है। बैंक के मुलाज़िमों द्वारा महीने में कई दिन 11-12 घंटे काम करना कोई नई बात नहीं है। साल 2017 से 2022 तक सरकारी बैंकों के विलय के कारण सरकारी बैंकों की शाखाओं की कुल गिनती 7189 तक कम हुई है। लेकिन सरकारी बैंकों के ग्राहकों में बढ़ौतरी हुई है। स्पष्ट है कि सरकार ने शाखाओं की कम हुई गिनती का बहाना बनाकर ज़रूरत के अनुसार भर्ती नहीं

(पन्ना 7 पर जारी)

# केवल सामाजिक व्यवहार ही सच्चाई की कसौटी हो सकता है

## - कॉमरेड माओ त्से-तुङ

**जन्म: 26 दिसंबर 1893**
**मृत्यु: 9 सितंबर 1976**

**(26 दिसंबर को विश्व मज़दूर वर्ग के महान शिक्षक और नेता, मज़दूर वर्ग के नेतृत्व में चीन की महान क्रांति के नेता कॉमरेड माओ त्से-तुङ का जन्मदिन है। इस अवसर पर हम यहाँ उनके दो लेखों – 'व्यवहार के बारे में' और 'पार्टी कार्यशैली में सुधार करो' के अंश पेश कर रहे हैं। – संपादक)**

मार्क्स से पहले का भौतिकवाद, मनुष्य की सामाजिक प्रकृति से अलग रहकर, उसके ऐतिहासिक विकास से अलग रहकर ज्ञान की समस्या को परखता था, और इसलिए सामाजिक व्यवहार पर, यानी उत्पादन और वर्ग-संघर्ष पर ज्ञान की निर्भरता को वह नहीं समझ पाता था।

पहली बात तो यह कि मार्क्सवादी लोग मनुष्य की उत्पादक कार्रवाई को सबसे बुनियादी व्यावहारिक कार्रवाई मानते हैं, एक ऐसी कार्रवाई जो उसकी अन्य सभी कार्रवाइयों को निश्चित करती है। मनुष्य का ज्ञान मुख्यतः उसकी भौतिक उत्पादन की कार्रवाई पर निर्भर रहता है, जिसके ज़रिए वह क़दम-ब-क़दम प्राकृतिक घटनाक्रम, प्रकृति के स्वरूप, प्रकृति के नियमों और अपने और प्रकृति के बीच के संबंधों की जानकारी प्राप्त करता है; और अपनी उत्पादक कार्रवाई के ज़रिए वह क़दम-ब-क़दम मनुष्य और मनुष्य के बीच के निश्चित संबंधों की जानकारी भी अलग-अलग मात्रा में प्राप्त करता जाता है। इस तरह का कोई भी ज्ञान उत्पादक कार्रवाई से अलग रहकर प्राप्त नहीं किया जा सकता। एक वर्गहीन समाज में हर व्यक्ति समाज के एक सदस्य के रूप में समाज के अन्य सदस्यों के साथ मिलकर परिश्रम करता है, उनके साथ एक निश्चित प्रकार के उत्पादन-संबंध क़ायम करता है और मनुष्य की भौतिक ज़रूरतें पूरी करने के लिए उत्पादक कार्रवाई में जुट जाता है। विभिन्न प्रकार के वर्ग-समाजों में, समाज के सभी वर्गों के सदस्य भी, भिन्न रूपों में, एक निश्चित प्रकार के उत्पादन-संबंध क़ायम करते हैं और अपनी भौतिक ज़रूरतें पूरी करने के लिए उत्पादक कार्रवाई में जुट जाते हैं। यही वह मूल स्रोत है, जहाँ से मनुष्य का ज्ञान विकसित होता है।

मनुष्य का सामाजिक व्यवहार महज़ उसकी उत्पादक कार्रवाई तक ही सीमित नहीं रहता, बल्कि बहुत से अन्य रूप भी धारण करता है – जैसे वर्ग-संघर्ष, राजनीतिक जीवन, वैज्ञानिक और कलात्मक गतिविधि; संक्षेप में यह कि समाज के अंदर मनुष्य एक सामाजिक प्राणी के रूप में समाज के व्यावहारिक जीवन के सभी क्षेत्रों में भाग लेता है। इस तरह मनुष्य ना सिर्फ़ अपने भौतिक जीवन द्वारा बल्कि अपने राजनीतिक और सांस्कृतिक जीवन द्वारा भी (राजनीतिक जीवन और सांस्कृतिक जीवन दोनों ही भौतिक जीवन से घनिष्ठ रूप में संबंधित हैं) मनुष्य और मनुष्य के बीच के विभिन्न प्रकार के संबंधों की जानकारी अलग-अलग मात्रा में प्राप्त करता रहता है। सामाजिक व्यवहार के इन अन्य रूपों में, ख़ास तौर पर विभिन्न प्रकार का वर्ग-संघर्ष, मानव ज्ञान के विकास पर गहरा प्रभाव डालता है। वर्ग-समाज में प्रत्येक व्यक्ति किसी-ना-किसी वर्ग के सदस्य के रूप में ही जीवन व्यतीत करता है और हर प्रकार की विचारधारा पर, बिना किसी अपवाद के, किसी-ना-किसी वर्ग की छाप होती है।

मार्क्सवादियों का मत है कि मानव-समाज में उत्पादक कार्रवाई क़दम-ब-क़दम निम्न स्तर से उच्च स्तर की ओर बढ़ती जाती है, और फलस्वरूप मानव-ज्ञान भी, चाहे वह प्रकृति संबंधी हो चाहे समाज संबंधी, क़दम-ब-क़दम निम्न स्तर से उच्च स्तर की ओर बढ़ता जाता है, यानी उथलेपन से गहरेपन की ओर और बहुमुखीपन से एंकागीपन की ओर बढ़ता जाता है। इतिहास में बहुत समय तक समाज के इतिहास के बारे में मानव का ज्ञान एकांगी ही बना रहा, क्योंकि एक ओर तो शोषक वर्गों के पूर्वाग्रह समाज के इतिहास को सदा विकृत करते रहते थे, और दूसरी ओर छोटे पैमाने का उत्पादन मानव-दृष्टिकोण को सीमित कर देता था। उत्पादन की बड़ी शक्तियों (बड़े पैमाने के उद्योग-धंधों) के साथ जब आधुनिक सर्वहारा वर्ग का आविर्भाव हुआ, तभी मनुष्य सामाजिक इतिहास के विकास की सर्वांगीण, ऐतिहासिक समझ प्राप्त कर सका और समाज संबंधी अपने ज्ञान को विज्ञान का रूप, मार्क्सवाद के विज्ञान का रूप दे सका।

मार्क्सवादियों का मत है कि मनुष्य का सामाजिक व्यवहार ही बाहरी जगत के बारे में मानव-ज्ञान की सच्चाई की कसौटी है। वास्तव में मानव-ज्ञान को सिर्फ़ तभी सिद्ध किया जाता है, जब सामाजिक व्यवहार (भौतिक उत्पादन, वर्ग-संघर्ष या वैज्ञानिक प्रयोग) की प्रक्रिया के दौरान मनुष्य प्रत्याशित परिणाम प्राप्त कर लेता है। यदि मनुष्य अपने काम में सफल होना चाहता है, अर्थात प्रत्याशित परिणाम प्राप्त करना चाहता है, तो उसे चाहिए कि वह अपने विचारों को वस्तुगत बाहरी जगत के नियमों के अनुरूप बनाए; अगर उसके विचार इन नियमों के अनुरूप नहीं बनेंगे, तो वह अपने व्यवहार में असफल हो जाएगा। जब वह असफल हो जाता है, तो अपनी असफलता से सबक़ सीखता है, अपने विचारों को सुधार कर उन्हें बाहरी जगत के नियमों के अनुरूप बना लेता है और इस प्रकार अपनी असफलता को सफलता में बदल सकता है; "असफलता सफलता की जननी है" और "ठोकर खाने से बुद्धि बढ़ती है" का यही अर्थ है। द्वंद्वात्मक भौतिकवादी ज्ञान-सिद्धांत व्यवहार को प्रथम स्थान देता है। उसका कहना है कि मानव-ज्ञान को व्यवहार से हरगिज अलग नहीं किया जा सकता। वह उन तमाम ग़लत सिद्धांतों को ठुकरा देता है, जो व्यवहार के महत्व को अस्वीकार करते हैं या ज्ञान को व्यवहार से अलग करते हैं। जैसा कि लेनिन ने कहा है, "व्यवहार (सैद्धांतिक) ज्ञान से बढ़कर है, क्योंकि उसमें ना सिर्फ़ सार्वभौमिकता का गुण होता है, बल्कि प्रत्यक्ष वास्तविकता का गुण भी होता है।"[1] मार्क्सवादी दर्शन – द्वंद्वात्मक भौतिकवाद – की दो प्रमुख विशेषताएँ हैं। पहली विशेषता है इसका वर्ग-स्वरूप: यह खुलेआम ऐलान करता है कि द्वंद्वात्मक भौतिकवाद सर्वहारा वर्ग की सेवा करता है। दूसरी विशेषता है इसकी व्यावहारिकता: यह इस बात पर ज़ोर देता है कि सिद्धांत व्यवहार पर निर्भर है, इस बात पर ज़ोर देता है कि सिद्धांत का आधार व्यवहार है और वह बदले में व्यवहार की ही सेवा करता है। किसी ज्ञान या सिद्धांत की सच्चाई का निर्णय हमारी मनोगत भावनाएँ नहीं करतीं, बल्कि सामाजिक व्यवहार के वस्तुगत परिणाम करते हैं। केवल सामाजिक व्यवहार ही सच्चाई की कसौटी हो सकता है। द्वंद्वात्मक भौतिकवादी ज्ञान-सिद्धांत में व्यवहार का दृष्टिकोण प्रमुख और बुनियादी दृष्टिकोण है।

**('व्यवहार के बारे में' लेख का अंश)**

ज्ञान क्या है? जब से वर्ग-समाज बना है दुनिया में सिर्फ़ दो ही प्रकार का ज्ञान देखने में आया है – उत्पादन के संघर्ष का ज्ञान और वर्ग-संघर्ष का ज्ञान। प्राकृतिक विज्ञान और सामाजिक विज्ञान उक्त दो प्रकार के ज्ञान का निचोड़ है और दर्शनशास्त्र प्रकृति संबंधी ज्ञान और सामाजिक ज्ञान का सामान्यीकरण और समाकलन है। क्या ज्ञान की और भी कोई क़िस्म है? नहीं। अब हम एक नज़र उन विद्यार्थियों पर डालें, जिनकी शिक्षा-दीक्षा उन स्कूलों में हुई है, जो समाज की व्यावहारिक कार्रवाइयों से बिल्कुल कटे हुए हैं। उनकी क्या हालत है। एक व्यक्ति इस प्रकार के प्राथमिक स्कूल से क्रमवार इसी प्रकार के विश्वविद्यालय में जाता है, स्नातक बन जाता है और यह समझ लिया जाता है कि उसके पास ज्ञान का भंडार है। लेकिन जो कुछ भी उसने हासिल किया है, वह केवल किताबी ज्ञान ही है। उसने अभी तक किसी भी व्यावहारिक कार्रवाई में हिस्सा नहीं लिया अथवा उसने जो कुछ सीखा है, उसे जीवन के किसी क्षेत्र में लागू नहीं किया। क्या ऐसे व्यक्ति को पूर्ण रूप से विकसित बुद्धिजीवी समझा जा सकता है? मेरी राय में ऐसा समझना मुश्किल है, क्योंकि उसका ज्ञान अभी तक अपूर्ण है। तब अपेक्षाकृत रूप से पूर्ण ज्ञान आख़िर क्या है। समस्त अपेक्षाकृत पूर्ण ज्ञान तक पहुँचने की दो अवस्थाएँ होती हैं। पहली अवस्था इंद्रियग्राह्य ज्ञान की अवस्था है और दूसरी अवस्था बुद्धिसंगत ज्ञान की; बुद्धिसंगत ज्ञान इंद्रियग्राह्य ज्ञान की उच्चस्तरीय विकसित अवस्था है। विद्यार्थियों का किताबी ज्ञान किस प्रकार का ज्ञान है, अगर यह मान भी लिया जाए कि उनका तमाम ज्ञान सत्य है, तो भी ज्ञान ऐसा नहीं है, जिसे उन्होंने अपने व्यक्तिगत अनुभव से प्राप्त किया हो, बल्कि यह ज्ञान उन सिद्धांतों से मिलकर बना है, जिन्हें उनके पुरखों ने उत्पादन के संघर्ष और वर्ग-संघर्ष के अनुभवों का निचोड़ निकालकर निर्धारित किया था।

**(अगले पन्ने पर जारी)**

(पिछले पन्ने से आगे)

यह बहुत ज़रूरी है कि विद्यार्थी इस प्रकार का ज्ञान प्राप्त करें, लेकिन उन्हें यह समझ लेना चाहिए कि जहाँ तक उनका अपना संबंध है, एक प्रकार से उनके लिए ज्ञान एकतरफ़ा है, एक ऐसी चीज़ है, जिसकी परख दूसरे लोगों ने तो कर ली है, लेकिन उन्होंने ख़ुद अभी तक नहीं की है। सबसे महत्वपूर्ण बात तो यह है कि इस ज्ञान को जीवन में और व्यवहार में लागू करने में निपुणता हासिल की जाए। इसलिए, मैं उन लोगों को जिन्होंने सिर्फ़ किताबी ज्ञान प्राप्त किया है और जिनका वास्तविकता से अभी वास्ता नहीं पड़ा, और उन लोगों को भी जिन्होंने थोड़ा-बहुत व्यावहारिक अनुभव प्राप्त कर रखा है, यह सलाह दूँगा कि वे अपनी कमियों को महसूस करें और कुछ और विनम्र बनें।

जिन्होंने सिर्फ़ किताबी ज्ञान प्राप्त किया है, उन्हें सच्चे मायने में बुद्धिजीवी कैसे बनाया जा सकता है। इसका सिर्फ़ एक ही तरीक़ा है कि वे व्यावहारिक कार्य में भाग लें और व्यावहारिक कार्यकर्ता बनें और जो लोग सैद्धांतिक कार्य में लगे हुए हैं, वे महत्वपूर्ण व्यावहारिक समस्याओं का अध्ययन करें। इस प्रकार हम अपने उद्देश्य में सफल होंगे।

मैंने जो कुछ कहा है शायद उससे कुछ लोग नाराज़ हो जाएँ। वे कहेंगे, "आपकी व्याख्या के अनुसार तो मार्क्स को भी बुद्धिजीवी नहीं समझा जा सकता।" मेरा कहना है कि वे ग़लती पर हैं। मार्क्स ने क्रांतिकारी आंदोलन के व्यवहार में भाग लिया और क्रांतिकारी सिद्धांत की रचना भी की। पूँजीवाद के सबसे साधारण तत्व तिजारती माल से शुरू करके उन्होंने पूँजीवादी समाज के आर्थिक ढाँचे का पूर्ण रूप से अध्ययन किया। लाखों-करोड़ों लोग तिजारती माल को हर रोज़ देखते और इस्तेमाल करते थे, लेकिन वे इसके इतने आदी हो चुके थे कि इस ओर उनका ध्यान भी नहीं गया। सिर्फ़ मार्क्स ने ही तिजारती माल का वैज्ञानिक ढंग से अध्ययन किया। उन्होंने तिजारती माल के वास्तविक विकास के बारे में महान अनुसंधान-कार्य किया, और जो चीज़ें सार्वभौमिक रूप से मौजूद थीं, उनसे एक पूर्ण वैज्ञानिक सिद्धांत खोज निकाला। उन्होंने प्रकृति, इतिहास और सर्वहारा क्रांति का अध्ययन किया और द्वंद्वात्मक भौतिकवाद, ऐतिहासिक भौतिकवाद और सर्वहारा क्रांति के सिद्धांत की रचना की। इस प्रकार मार्क्स मानव-बुद्धि के चरम उत्कर्ष का प्रतिनिधित्व करने वाले एक अत्यंत पूर्ण रूप से विकसित बुद्धिजीवी बन गए; वे उन लोगों से बुनियादी तौर पर भिन्न थे, जिन्हें सिर्फ़ किताबी ज्ञान प्राप्त है। मार्क्स ने व्यावहारिक संघर्षों के दौरान विस्तृत रूप से जाँच-पड़ताल की और अध्ययन किया, सामान्यीकरण का काम किया और फिर अपने निष्कर्षों को व्यावहारिक संघर्षों की कसौटी पर परखा – इसी को हम सैद्धांतिक कार्य कहते हैं। हमारी पार्टी को बहुत बड़ी संख्या में ऐसे साथियों की ज़रूरत है, जो यह सीखें कि यह काम कैसे किया जाना चाहिए। हमारी पार्टी में बहुत से साथी ऐसे हैं, जो इस प्रकार का सैद्धांतिक अनुसंधान-कार्य करना सीख सकते है; उनमें से अधिकांश लोग समझदार और होनहार हैं और हमें उनकी क़द्र करनी चाहिए। लेकिन उन्हें सही उसूलों पर चलना चाहिए और अतीत की ग़लतियों को दोहराना नहीं चाहिए। उन्हें कठमुल्लावाद का परित्याग कर देना चाहिए और अपने आपको पुस्तकों में लिखित वाक्यांशों तक ही सीमित नहीं रखना चाहिए।

दुनिया में सिर्फ़ एक ही क़िस्म का सच्चा सिद्धांत होता है – वह सिद्धांत जो वस्तुगत यथार्थ से निकाला गया हो और वस्तुगत यथार्थ की कसौटी पर परखा जा चुका हो; हमारी समझ में और कोई चीज़ सिद्धांत कहलाने लायक़ नहीं है। स्तालिन ने कहा है कि व्यवहार से संबंध ना रखने वाला सिद्धांत निरुद्देश्य सिद्धांत हो जाता है। निरुद्देश्य सिद्धांत व्यर्थ और मिथ्या होता है और उसे त्याग देना चाहिए। मार्क्सवाद-लेनिनवाद अत्यंत सही, अत्यंत वैज्ञानिक और अत्यंत क्रांतिकारी सत्य है, जो वस्तुगत यथार्थ से पैदा हुआ है और जिसे वस्तुगत यथार्थ की कसौटी पर परखा जा चुका है; लेकिन बहुत से लोग, जो मार्क्सवाद-लेनिनवाद का अध्ययन करते है, उसे निष्प्राण कठमुल्ला-सूत्र समझते है, और इस तरह वे सिद्धांत के विकास को अवरुद्ध कर देते हैं और अपने को और दूसरे साथियों को नुक़सान पहुँचाते हैं।

दूसरी तरफ़, अगर हमारे उन साथियों ने, जो व्यावहारिक कार्य में लगे हुए हैं, अपने अनुभव का दुरुपयोग किया तो वे भी नुक़सान उठाएँगे। यह सच है कि उनका अनुभव अक्सर बड़ा ही समृद्ध होता है, जो हमारे लिए अत्यंत मूल्यवान है। लेकिन अगर वे अपने ही अनुभव से संतुष्ट बने रहें, तो यह बहुत ही ख़तरनाक बात होगी। उन्हें महसूस करना चाहिए कि उनका ज्ञान अधिकांशतः इंद्रियग्राह्य और आंशिक होता है और उनमें बुद्धिसंगत और संपूर्ण ज्ञान का अभाव होता है; दूसरे शब्दों में, उनमें सिद्धांत का अभाव होता है और उनका ज्ञान भी अपेक्षाकृत रूप से अपूर्ण होता है। अपेक्षाकृत रूप से पूर्ण ज्ञान के बग़ैर, क्रांतिकारी कार्य को भलीभाँति कर पाना असंभव है।

इस प्रकार, अपूर्ण ज्ञान दो तरह का होता है, एक तो पका-पकाया ज्ञान जो किताबों में पाया जाता है और दूसरा वह ज्ञान जो अधिकांशतः इंद्रियग्राह्य और आंशिक होता है; यह दोनों ही तरह का ज्ञान एकतरफ़ा होता है। इन दोनों के समन्वय से ही विशद और अपेक्षाकृत पूर्ण ज्ञान की प्राप्ति हो सकती है।

**('पार्टी की कार्यशैली में सुधार करो' लेख का अंश)**

# बेरोज़गारी पर पर्दा डालते सरकारी आँकड़े

12 अक्टूबर 2023 को प्रधानमंत्री ने अपने भाषण में कहा कि "भारत की फैल रही अर्थव्यवस्था नौजवानों के लिए नए मौक़े लेकर आ रही है और इसकी बदौलत बेरोज़गारी की दर छह सालों में सबसे कम है।" सरकारी रिपोर्ट के मुताबिक़ जुलाई 2022 से लेकर जून 2023 तक बेरोज़गारी दर 3.2% रही, जो पहले से कम है। और अब भाजपा सरकार इन आँकड़ों का आने वाले चुनाव में पूरा फ़ायदा लेना चाहेगी। इस रिपोर्ट का प्रचार करने का यही मक़सद है, वरना 2017-18 की बेरोज़गारी संबंधित रिपोर्ट, जिसमें बेरोज़गारी बढ़ी हुई आई थी, 2019 के चुनाव से पहले बाहर नहीं आने दी थी।

असल में यह 3.2% की बेरोज़गारी दर, बेरोज़गारी की असली तस्वीर नहीं पेश करती। यहाँ रोज़गार की गुणवत्ता का ज़िक्र करना बहुत ज़रूरी है। पिछले समय में रोज़गार में हुई वृद्धि, बुरी गुणवत्ता वाले रोज़गार की वृद्धि है। छह साल पहले स्व-रोज़गार में लगे लोगों की गिनती 52.2% से बढ़कर 2023 में 57.3% हो गई। कुल रोज़गार में बाकायदा तनख़्वाहदार मज़दूरों की गिनती कम हुई है। स्व-रोज़गार में लगे मज़दूरों में वृद्धि का सबसे बड़ा कारण घरेलू इकाइयों में काम करने वाले सहायकों की गिनती का बढ़ना है, जो 2022-23 में कुल श्रम शक्ति का 18.3% हिस्सा बनते हैं। 2017-18 में यह गिनती 13.6% थी, यानी 5 प्रतिशत की वृद्धि। साफ़ है कि चमकदार आँकड़ों के पीछे की असली तस्वीर बहुत गंदी है। रोज़गार बढ़ा है, पर बुरे काम के हालातों वाले रोज़गार का हिस्सा भी बढ़ा है। उपरोक्त वृद्धि अनौपचारिक रोज़गार में ही हो रही है, जहाँ मज़दूर को नाममात्र सुविधाएँ मिलती हैं। ग़ैर-खेतीबाड़ी मर्द मज़दूरों का 78% हिस्सा अनौपचारिक नौकरियाँ कर रहे हैं, यह गिनती 6 साल पहले 71% थी। औरतों में यह वृद्धि 54.8% से बढ़कर 60% प्रतिशत हुई है। अगर काम की सुरक्षा और हालातों की बात करें, तो 60% तनख़्वाहदार मज़दूरों के पास किसी भी तरह का कोई लिखित इक़रारनामा नहीं है, 47% बिना तनख़्वाह कटौती के छुट्टी नहीं ले सकते, और 54% मज़दूरों के पास किसी भी प्रकार की सामाजिक सुरक्षा नहीं है। खेती की पैदावार, भूमिहीन मज़दूरों और अर्ध-मज़दूरों (जो दूसरे किसानों के खेतों में या किसी और जगह मज़दूरी भी करते हैं) द्वारा की जाती है। इस तबक़े को सारा साल रोज़गार नहीं मिलता, लिखित इक़रारनामा या अन्य सुविधा तो दूर की बात है। पर इन मज़दूरों को भी रोज़गार वालों में ही माना जाता है। काम करने वाले काफ़ी मज़दूर एक से ज़्यादा जगहों पर काम करते हैं। काम सुरक्षा को लेकर बेयक़ीनी बनी रहती है, पर कहने को यह भी रोज़गार प्राप्त नौजवानों का हिस्सा है। जिस देश की श्रम शक्ति के 90% हिस्से के पास कोई सुरक्षित नौकरी नहीं, वहाँ "मुझे नौकरी नहीं, बस कोई भी काम चाहिए" वाली मानसिकता हावी हो जाती है। पर इस मानसिकता के साथ बुरी गुणवत्ता का काम हाथ में लेने वाले मज़दूर इस 3.2% के बेरोज़गारी वाले आँकड़े में नहीं आते। यानी कि कम बेरोज़गारी दर का मतलब रोज़गार मिलने में आसानी या मेहनतकशों की ख़ुशहाली तो बिल्कुल नहीं है।

अब बात करते हैं इन आँकड़ों की प्रामाणिकता की। क्या सरकार का इतिहास देखते हुए, इन सरकारी आँकड़ों पर भरोसा किया जा सकता है? अप्रैल 2017 से केंद्र सरकार पी.एल.एफ़.एस. नाम का तिमाही सर्वेक्षण जारी करती है, जिसके तहत बेरोज़गारी की रिपोर्ट पेश की गई थी। इसके अलावा इसमें श्रम शक्ति की हिस्सेदारी दर भी शामिल होती है। सर्वेक्षण में औरतों की श्रम शक्ति हिस्सेदारी की दर 21.1% है। बेशक यह कोई अच्छा आँकड़ा नहीं है, पर इसका गुणगान भी मोदी द्वारा ज़ोर देकर किया गया। अब हैरानी की बात यह है कि पी.टी.आई. की एक ख़बर के मुताबिक़ यही आँकड़ा शिक्षा मंत्री ने 37% बताया। आँकड़े में 16% के बड़े अंतर को कैसे समझा जाए, इसका जवाब तो केंद्र सरकार ही दे सकती है। सरकारी आँकड़े को लेकर भाजपा के अपने मंत्री एक सुर में नहीं हैं! उल्लेखनीय है कि किए गए सर्वेक्षण में सवालों की तोड़-मरोड़ से आँकड़े बदल जाते हैं। जैसे औरतों को यह पूछने की जगह कि "क्या आप काम करती हैं?" पूछा जाता है – "क्या आप घर चलाने में योगदान देती हैं?" यहाँ इन आँकड़ों के सही होने पर सवालिया निशान उठते हैं। कई वरिष्ठ अर्थशास्त्री सरकारी रिपोर्टों की जगह सी.एम.

(अगले पन्ने पर जारी)

(पिछले पन्ने से आगे)

आई.ई. जैसी संस्थाओं की रिपोर्टों को ज़्यादा भरोसेमंद मानते हैं, जो हर महीने सर्वेक्षण करते रहे हैं।

जहाँ मोदी बेरोज़गारी दर के 6 साल में सबसे कम होने की बात कर रहा है, वहीं दूसरी ओर सी.एम.आई.ई. की नवंबर में आई रिपोर्ट तो अलग तस्वीर पेश करती है। रिपोर्ट के मुताबिक़, बेरोज़गारी दर दो सालों का रिकॉर्ड तोड़ती हुई सितंबर में 7.09% से सीधा 10.05% पर पहुँच गई है। मई 2021 के बाद यह सबसे ज़्यादा है। रिपोर्ट के मुताबिक़ अक्टूबर में 1 करोड़ लोग श्रम मंडी में नौकरियों के लिए आए, पर वे रोज़गार पाने में नाकाम रहे। यही भारतीय अर्थव्यवस्था की असली तस्वीर है, जो आँकड़ों की हेराफेरियों से छुपाई जाती है। 'विकासशील समाजों की पढ़ाई का केंद्र' नामक एक संस्था के इसी साल के सर्वेक्षण के मुताबिक़ 15 से 34 साल के 36% नौजवान बेरोज़गारी को भारत की सबसे बड़ी समस्या मानते हैं, जो 2016 के दौरान 18% ही थे। इसलिए सरकार चाहे कितने मर्ज़ी जुमले मार ले, पर सच यही है कि भारत का नौजवान बेरोज़गारी से जूझ रहा है।

दरअसल बेरोज़गारी इस व्यवस्था के वजूद में समोई हुई है। पूँजीवादी व्यवस्था बेरोज़गारों की आरक्षित फ़ौज तैयार करता है, जिसमें आर्थिक संकट के दौरान और वृद्धि होती है। यह पूँजीपतियों के लिए मज़दूरों की दिहाड़ी कम करने का स्रोत होता है। इसके बिना, भारत जैसे कम विकसित देशों में श्रम क़ानूनों आदि द्वारा कम-से-कम सुविधा भी मज़दूरों को नहीं मिलती, जिससे पूँजीपति को मज़दूरों से अधिक से अधिक काम करवाने में और आसानी हो जाती है। ऊपर से मोदी सरकार श्रम क़ानूनों को ख़त्म करके चार नए लेबर कोड ले आई है, जिसमें बचे-खुचे मज़दूर अधिकारों पर भी हमला बोला जाना है। ग्रामीण क्षेत्र में थोड़ा-बहुत रोज़गार पैदा करने वाली मनरेगा जैसी स्कीमों के फ़ंड भी पिछले साल से कम कर दिए गए हैं। कुल निचोड़ यह है कि पूँजीवादी व्यवस्था में बेरोज़गारी अटल है और यहाँ सरकारें भी पूँजीपतियों की सेवा के लिए ही बैठी हैं। इसलिए आज मज़दूरों की अगवाई में मेहनतकशों के बड़े हिस्से को रोज़गार के लिए लामबंद और संगठित करने की अहम ज़रूरत है।

**– जोबन**

**पुस्तक परिचय**

# मक्सिम गोर्की का उपन्यास: 'वे तीन'

गोर्की को एक महान लेखक और समाजवादी यथार्थवाद के प्रणेता के रूप में जाना जाता है। मक्सिम गोर्की (1869-1936) साहित्य के पहले लेखक थे जिन्होंने मज़दूर वर्ग की युगप्रवर्तक शक्ति को स्पष्ट रूप से पहचाना, उसके भीतर छिपे मानवता के उज्ज्वल भविष्य को देखा। उनका लेखन मानवता और जीवन के प्रति उनके प्रेम से ओत-प्रोत है। मज़दूरों के जीवन, उनके प्रेम, उनकी नफ़रत आदि को गोर्की ने साहित्य के पन्नों पर उतारा। गोर्की बचपन से ही उत्पीड़ित मज़दूर वर्ग के संपर्क में रहे हैं। वे एक मज़दूर के रूप में बड़े हुए और घरेलू काम से लेकर बेकरी, कारख़ानों, जहाज़ों और खेतों आदि में विभिन्न प्रकार की नौकरियों में काम किया। ये अनुभव उनकी साहित्यिक कृतियों का आधार बने। साहित्यिक रचनाओं में उन्होंने रूसी जीवन की सच्चाई का यथार्थवादी चित्रण किसी व्यक्ति के रूप में नहीं किया, बल्कि उन परिस्थितियों को बदलने के लिए एक प्रेरणा स्रोत के रूप में किया। गोर्की के इस उपन्यास में भी केंद्रीय स्थान पर मज़दूरों का जीवन ही है। यह उपन्यास लगभग 400 पृष्ठों का है और पंजाबी, हिंदी, अंग्रेज़ी भाषाओं में उपलब्ध है। उपन्यास के बारे में यह परिचय रादुगा प्रकाशन मॉस्को के हिंदी उपन्यास 'वे तीन' को पढ़ने के बाद लिखा गया है। 'वे तीन' उपन्यास में शहर में रहने वाले मज़दूरों की स्थिति, बच्चों का बचपन किन बुरी परिस्थितियों से गुज़रता है, इसका बख़ूबी वर्णन किया गया है। यह उपन्यास तीन पात्रों के इर्द-गिर्द घूमता है। जो एक ही जगह पर पले-बढ़े हैं।

इसके तीन नायक – इल्या लूनोव, याकोव फ़िल्मानोव और पावेल ग्राचोव हैं। जिन्हें गोर्की ने उनकी शहरी भाग-दौड़ वाली, शोषण-उत्पीड़न वाली ज़िंदगी को उनके बचपन से जवानी तक के कालखंड में चित्रित किया है। एक ही बस्ती में ये तीनों बच्चे अलग-अलग परिवारों से आकर इकट्ठे होते हैं। लेकिन जीवन की घटनाएँ उन्हें तीन अलग-अलग रास्तों पर ले जाती हैं। एक लुटेरे समाज में, कठिन श्रम, पशुवत जीवन मज़दूरों को मानवता से कैसे दूर ले जाता है? मनुष्य किन परिस्थितियों में से गुज़रते हुए अमानवीय हो जाता है? जीवन की सच्चाइयों ने कैसे मज़दूरों के सामने भी यह प्रश्न खड़ा कर दिया कि जीवन क्या है? मनुष्य क्यों जीता है? मनुष्य को रोटी के सिवा और क्या कुछ चाहिए? भरपेट खाने वाले क्या भूखी जनता को दबाते ही रहेंगे? क्या ईश्वर सच में है, क्या वह जीवन की क्रूरता देखता है? आदि ऐसे अनेकों ही सवालों के जवाब तलाशते ये पात्र इस उपन्यास में नज़र आते हैं।

इस उपन्यास में ज़्यादातर कहानी इल्या के इर्द-गिर्द घूमती है। जो अपने चाचा तेरेंती के साथ शहर आता है। वे एक मज़दूर बेहड़े में रहने लगते हैं। एक ऐसा घर जहाँ कई मज़दूर परिवार बसे हुए हैं, जहाँ एक शराबखाना भी है। इल्या के चाचा उसी शराबखाने में बर्तन माँजने का काम करने लगते हैं। उसी मज़दूर बेहड़े में "दादा येर्मई" नामक एक बूढ़ा व्यक्ति रहता है, जो कबाड़ इकट्ठा करने का काम करता है, भगवान में विश्वास करता है और रात में बच्चों को कहानियाँ सुनाता है। यहीं पर इल्या की मुलाक़ात याकोब से होती है, जो उसी की उम्र का है, लेकिन घर के मालिक का बेटा है। याकोव को किताबें पढ़ने का शौक़ है और उसे हर तरह के सवाल पूछने का शौक़ है। कहने को मालिक का बेटा लेकिन उसकी रुचियाँ अलग हैं। उसे शराबखाना पसंद नहीं है, वह अपने पिता को भी पसंद नहीं करता, वह अपने घर से चोरी करके ग़रीब माशा की मदद करता है। अपनी आख़िरी सांस तक याकोव को माशा नाम की एक कमज़ोर, सूखी-सी लड़की की चिंता सताती रहती है, जिसे एक दरिंदे को बेच दिया जाता है। याकोव इल्या का अच्छा दोस्त बन जाता है। इल्या का मज़दूर बेहड़े से बाहर का जीवन दादा येर्मई के साथ शुरू होता है। इल्या की पढ़ाई का बोझ दादा अपने सिर पर लेते हैं। इल्या कचरा बीनने उनके साथ जाता है और स्कूल में पढ़ाई भी शुरू कर देता है। बच्चे उसे कबाड़ी कहकर चिढ़ाते हैं, उसके कपड़ों का मज़ाक़ उड़ाते हैं। इल्या स्कूल से दूर हो जाता है। इस उपन्यास का तीसरा पात्र पावेल भी उसी मज़दूर बेहड़े में रहता है। उसके पिता एक लोहार हैं। पावेल का शरीर मज़बूत है, दूसरों को पीट भी देता है, जो कहता है वो करता है। इल्या और याकोव का वास्ता पावेल से तब पड़ता है, जब पावेल की माँ की उसके पिता द्वारा हत्या कर दी जाती है। पिता को पुलिस द्वारा गिरफ़्तार कर लिया जाता है, पावेल अकेला रह जाता है। जिसे मोची अपने पास रखता है। पावेल बच्चों द्वारा उसे अनाथ कहे जाने से चिढ़ता है, उलटे कहता है, "अब मैं अकेला रहूँगा, अच्छे से पढ़ाई करूँगा, यहाँ से भाग जाऊँगा"! पावेल वहाँ से भाग जाता है। शहर से दूर, मज़दूर बेहड़े की ज़िंदगी से दूर, वह अपने जीवन के मीठे-कड़वे अनुभवों को इकट्ठा करता है। वहीं इल्या की ज़िंदगी में एक ऐसी घटना घटित होती है, जिससे उसके दिल में हर किसी के लिए नफ़रत पैदा हो जाती है। उसके चाचा और याकोब के पिता द्वारा पैसों के लिए की गई उसके दादा येर्मई की हत्या ने उसके दिमाग़ पर गहरी छाप छोड़ी। अब वह अलग-थलग रहने लगा था। अपनी उम्र से ज़्यादा गंभीर हो गया था। उसके होंठ हमेशा भींचे रहते थे। वह अपने से बड़ों पर कड़ी नज़र रखने लगा था... दूसरों में बुराई ढूँढ़कर उसे ज़्यादा संतुष्टि मिलती थी... और अब बुराई उसे ज़्यादा नज़र आने लगी थी।' इल्या का व्यक्तित्व ऐसा हो गया कि उसे हर किसी में केवल बुराई ही नज़र आने लगी। जीवन की कुरूपता के प्रति नफ़रत उसके दिल में घर कर गई थी, जिसे उसने आम लोगों से नफ़रत करके निकाला।

पावेल फिर से याकोव और इल्या के जीवन में वापस आता है। जहाँ वह बताता है कि मैं कभी स्कूल नहीं गया, मुझे कुछ क़ैदियों ने पढ़ाया है। पावेल ऐसी कहानियाँ पढ़कर आता हैं, जो वास्तविक जीवन से जुड़ी हुई हैं। पावेल ज़्यादा समय तक मज़दूर बेहड़े में नहीं रुकता, वह फिर से भाग जाता है। याकोव और इल्या भी किताबें पढ़ते हैं, लेकिन असल ज़िंदगी की सच्चाई से कटी हुई रोमांचक किताबें! जिसके कारण याकोव धीरे-धीरे वास्तविक जीवन से दूर होता जाता है, जिसके परिणामस्वरूप उदासीनता आती है। वह ज़िंदगी से डरने लगता है। इल्या को याकोव की किताबें और कहानियाँ जीवन से मेल खाती नहीं लगती हैं, क्योंकि 12 साल की उम्र में इल्या एक मज़दूर बन जाता है। पहला काम वह मछली की दुकान पर करता है, जहाँ गोर्की इल्या के माध्यम से पाठक को बताता है कि दुकान मालिक, व्यापारी कैसे होते हैं। इल्या को कुछ ज़्यादा ही सच बोलने के कारण काम से निकाल दिया जाता है। इसके बाद इल्या के मन में मालिक बनने की चाहत पैदा होती है। वह फ़ेरी वाला बन जाता है, बिना किसी अनुशासन के काम करता है। उसमें अपनी दुकान खोलने की इच्छा ज़ोर पकड़ने लगती है, वह और अधिक अमीर बनना चाहता है। इल्या को फ़ेरी लगाते हुए पावेल मिलता है, जहाँ उसे पता चलता है कि पावेल ने बहुत सारे काम करके छोड़े हैं। अब पावेल पानी के पाइप, नल ठीक करने वाली दुकान में काम करता है, आर्थिक रूप से पावेल की हालत ख़राब है, जिसे देखकर इल्या को अपनी अच्छी हालत से तसल्ली होती है, लेकिन पावेल अब भी पढ़ता है, कविताएँ लिखता है। जिस पर इल्या को हैरानी होती है। पावेल एक वेश्या वेरा से प्यार करता है, इल्या को वेरा से मिलवाता है। उस पल इल्या को

(अगले पन्ने पर जारी)

(पिछले पन्ने से आगे)

अब तक उसने जो कुछ भी देखा था, उससे एक अलग अनुभूति का अहसास होता है। वेश्यावृत्ति का धंधा धीरे-धीरे वेरा को ख़त्म कर रहा है, पावेल के लाख प्रयत्नों के बावजूद वह इसे छोड़ नहीं पाती। उस दौरान एक अन्य वेश्या जो वेरा की दोस्त है इल्या को पसंद करने लगती है, इल्या उसके साथ समय बिताता है, उसके साथ शारीरिक संबंध भी बनाता है, लेकिन वेश्या के धंधे के कारण उससे नफ़रत भी करता है। जब एक बूढ़ा व्यापारी उस वेश्या को ख़रीदता है जिससे इल्या प्यार करता है, तो इल्या घृणा से भर जाता है। घटनाओं का ऐसा चक्र चलता है कि इल्या ईर्ष्या, द्वेष, नफ़रत के चलते बूढ़े व्यापारी की हत्या कर देता है और उसकी दुकान से पैसे भी चुरा लेता है। उसके बाद वह मज़दूर बेहड़े को छोडकर एक मध्यवर्गीय परिवार के साथ रहना शुरू कर देता है, जो उसे लगता है कि कितना साफ़-सुथरा जीवन जीते हैं, लेकिन उनके जीवन का हिस्सा बनने पर उसे पता चलता है कि वे कैसे आत्मिक गंदगी में पूरी तरह से लिप्त हुए होते हैं! उसे मध्यवर्गीय साफ़-सुथरी महिला की तुलना में वेश्या जो उसे प्यार करती थी, अधिक अच्छी और सम्मानजनक लगने लगती है। मध्यवर्गीय परिवार का घर उसे वेश्या के अड्डे से भी अधिक घृणित लगता है। इसी बीच वह चोरी के पैसों से अपनी दुकान भी खोल लेता है। दुकान खोलकर भी उसे संतुष्टि नहीं मिलती, वह ख़ुश नहीं रहता। धोखाधड़ी, अपराध, हर जगह धोखाधड़ी, लोगों की बुराइयों से नफ़रत उसे जीने नहीं देती, क्योंकि वह ख़ुद को भी इसी नज़र से देखता है। आत्म-घृणा इल्या की रातों की नींद हराम कर देती है! दुकान का मालिक बनने के बाद वह एक लड़के को दुकान में नौकर रखता है, वह लड़का कम्युनिस्ट लड़की से मिलने का ज़रिया बनता है, लेकिन गोर्की अपने उपन्यास में इल्या की मालिक के रूप में हैसियत के कारण, इल्या को उस क्रांतिकारी लड़की के साथ टकराव में दिखाता है। वहीं पावेल की उस लड़की से मुलाक़ात, पावेल के जीवन में रोशनी लेकर आती है। पावेल एक मज़दूर का जीवन जीता है और क्रांतिकारियों से जुड़ जाता है। उपन्यास के अंतिम भाग में पावेल की प्रेमिका वेरा पर मुक़दमा चलता है। जिसे देखने इल्या भी जाता है, इल्या वहाँ देखता है कि जो चोर हैं, ठग हैं, अमीर व्यापारी हैं, कैसे जज बनकर बैठे हुए हैं, उन्होंने वेरा पर लगे चोरी के आरोप का फ़ैसला करना है! उस अदालत में इल्या से बात करते समय एक अज्ञात व्यक्ति टिप्पणी करता है, जिस पर इल्या भी सहमत होता है। उसका एक अंश- "इसमें कुछ भी नया नहीं है, कुल मिलाकर देखा जाए, तो हमारा तथाकथित न्याय ज़्यादातर एक दिखावा है, एक पूर्ण दिखावा... भूखे लोगों की बुरी आदतों को सुधारने के नाम पर खाए-पिए लोगों की कुछ दिमाग़ी कसरत हो जाती है। मैं अदालत में बहुत समय बिताता हूँ, लेकिन मैंने कभी किसी भूखे आदमी को किसी खाए-पिए आदमी पर मुक़दमा चलाते नहीं देखा।" मुक़दमे के दिन वेरा को कटघरे में लाया जाता है। पावेल अपना सिर नीचे झुकाए बैठा रहता है। लुटेरे "न्याय के लिए" वेरा से गंदे-गंदे सवाल पूछते हैं। इल्या का धैर्य जवाब दे जाता है, समाज के अन्याय से वह बौखला जाता है। शाम को वह एक मध्यवर्गीय परिवार में जन्मदिन की पार्टी में जाता है, जो भी सच वह मन में सँभाले था वह सब बोल देता है, यहाँ तक कि अपने द्वारा की गई हत्या के बारे में भी, पुलिस आती है और उसे पकड़ लेती है, लेकिन वह वहाँ से भागकर ख़ुद अपनी जान दे देता है!

इस उपन्यास का तीसरा पात्र याकोव है, वह इस समाज के लिए बना ही नहीं है, कोमल हृदय, लालच, ईर्ष्या से परे, वह इस समाज में अपने लिए जगह नहीं बना पाता, उसे वह काम करने के लिए कहा जाता है जो उसका मन नहीं मानता, वह शराबखाने की गुल्लक के पास खड़ा रहक़र अपना जीवन नहीं जी सकता, लेकिन विद्रोह करने का साहस भी उसमें नहीं है! याकोव धीरे-धीरे जीवन से कट जाता है और मृत्यु के बारे में ही बातें करता रहता है। उसमें जीने की कोई इच्छा नहीं रहती। इस प्रकार उपन्यासकार अपने तीन पात्रों को जीवन से दो-दो हाथ करते हुए दिखाता है। जिनमें से एक पात्र पावेल को सही रास्ते पर पहुँचते हुए दिखाया गया है। हालाँकि यह उपन्यास रूसी समाज के बारे में है, इस उपन्यास का कालखंड भी 1900-1901 है। लेकिन इस उपन्यास को पढ़ते समय केवल और केवल मज़दूरों का जीवन ही ध्यान में आता है। भारत के मज़दूर भी ऐसे ही हालात से गुज़र रहे हैं। उपन्यास में जितना मज़दूरों के पशुवत जीवन, और उस जीवन से उनकी नफ़रत पर प्रकाश डाला गया है, वह और अधिक गहराई से इस बात पर सोचने और महसूस करने पर ज़ोर देता है कि मज़दूर वर्ग क्रांति के ज़रिए ही इस दलदल से बाहर आ सकता है। जब सही रास्ता नज़र नहीं आता तो ग़लत विचार, ग़लत रास्ते जीवन को नष्ट कर देते हैं, जैसे इल्या का जीवन नष्ट हो गया। आइए इस उपन्यास को पढ़ते हुए मज़दूर बेहड़ों की और चलें, मज़दूरों की ज़िंदगी को देखें, सोचें कि क्रांति क्यों ज़रूरी है।

**– रविंदर कौर**

# चुनाव बांड योजना - राजनीतिक पार्टियों द्वारा मोटे चंदे डकारने का हथकंडा

लोकसभा चुनाव के नज़दीक आने से चुनाव बांडों का मसला एक बार फिर से चर्चा में है। चुनाव बांड की योजना, जो मोदी की भाजपा सरकार द्वारा जनवरी 2018 में राजनीतिक पार्टियों को मिलने वाले मोटे चंदों में "पारदर्शिता" लाने के बहाने लाई गई थी, उसने चुनाव चंदों की प्रक्रिया को और ज़्यादा धुँधला कर दिया है। राजनीतिक पार्टियों, ख़ासतौर पर भाजपा के लिए यह योजना तब से लेकर अभी तक पूँजीपतियों द्वारा दिए गए "गुप्त" और मोटे चंदों को डकारने का हथकंडा ही साबित हुई है। चूँकि चुनाव बांडों के मुताबिक़ कोई भी व्यक्ति, कंपनी या समूह किसी भी राजनीतिक पार्टी को चुनाव बांड ख़रीदकर दे सकता है और उसकी आर्थिक मदद कर सकता है। इस योजना के तहत बांड ख़रीदने वाले व्यक्ति, कंपनी या समूह और दान लेने वाली राजनीतिक पार्टी का नाम गुप्त रखा जाता है। इस योजना को लेकर पहले से ही कई ऐतराज़ और शक जताए गए थे, जोकि समय ने सही साबित किए हैं कि इससे वोट प्रक्रिया में भ्रष्टाचार और बढ़ेगा और धन्नासेठों के काले धन को सफ़ेद करने के लिए ही रास्ता निकाला होगा। इस योजना के अधीन राजनीतिक पार्टियाँ अभी तक 12,000 करोड़ रुपए के चंदे हासिल कर चुकी हैं। जिसमें 95 प्रतिशत से ज़्यादा चंदा सिर्फ़ भाजपा की झोली में आया है। इस चुनाव बांड की योजना पर भाजपा ने रिज़र्व बैंक, चुनाव आयोग समेत अन्य संगठनों के ऐतराज़ों को दरकिनार करते हुए अपनी झोलियाँ भरी हैं।

इस स्कीम के अनुसार कोई भी व्यक्ति या कंपनी भारतीय स्टेट बैंक की तयशुदा शाखाओं से जनवरी, अप्रैल, जुलाई और अक्टूबर के तय किए गए दिनों में एक हज़ार रुपए से लेकर एक लाख या एक करोड़ रुपए तक के जितने भी चाहे चुनाव बांड ख़रीद सकते हैं। पहले हर साल ख़रीद के दिनों की कुल संख्या 40 दिन थी और विधानसभा और लोकसभा चुनाव वाले साल में 70 दिन थी। जिसमें भाजपा ने बाद में संशोधन करके चुनाव वाले साल में दिनों की संख्या 85 दिन कर दी। राजनीतिक पार्टियाँ हासिल हुए उन बांडों को 15 दिनों के अंदर-अंदर अपने खाते में डालकर चंदा हासिल कर सकती हैं। ये चुनाव बांड पूँजीपतियों के लिए राजनीतिक पार्टियों को बेहिसाब वित्तीय सहायता देने का क़ानूनी हथकंडा ही साबित हुए हैं। जो कि सीधा-सीधा इस बात को स्पष्ट करते हैं कि सत्ता में कौन-सी पार्टी को लाना है, इसका फ़ैसला पैसों के बंडल देने वाले पूँजीपति करते हैं, यह बांड योजना इस बात का भ्रम भी दूर करती है कि आम जनता हुक्मरानों को चुनती है, जबकि यह चुनाव पूँजीपति घरानों द्वारा अपने हितों के मुताबिक़ चंदों के रूप में पहले ही की जा चुकी होती है। राजनीतिक पार्टियों के लिए आम जनता महज़ एक वोट पर्ची है, इससे बढ़कर और कुछ भी नहीं। यह चुनाव बांड पूँजीपतियों के काले धन को क़ानूनी करने का भी एक तरीक़ा है। इससे यह भी साफ़ है कि सत्ताधारी पार्टियाँ उन पूँजीपति घरानों, कंपनियों को फ़ायदा पहुँचाने वाले फ़ैसले करती हैं और नीतियाँ बनाती हैं, जिनसे उन्हें बड़ी मात्रा में चंदे मिले होते हैं।

ख़ुद सर्वोच्च न्यायालय ने कहा था कि चुनाव बांड जारी करने की प्रक्रिया पारदर्शी नहीं है। इसके जवाब में केंद्र सरकार का बेशर्मी से कहना था कि नागरिकों को चुनाव बांडों से संबंधित जानकारी प्राप्त करने का कोई बुनियादी अधिकार नहीं होना चाहिए। जबकि यह जानकारी हासिल करना जनता का अधिकार है, ताकि उन्हें पता लग सके कि सत्ता के तख़्तों पर बैठी राजनीतिक पार्टियाँ किससे और कितना चंदा हासिल कर रही हैं, जिससे इन राजनीतिक पार्टियों के झुकाव और प्रतिबद्धता की पुष्टि होती है। दूसरा, चूँकि राजनीतिक पार्टियाँ चुनाव ख़र्चों के लिए चुनाव बांड लेती हैं, इसलिए वोटरों को भी अधिकार होना चाहिए कि उन्हें यह जानकारी मिले कि किसी राजनीतिक पार्टी को किस स्रोत से कितने पैसे प्राप्त हुए। यह योजना वोटरों के जानकारी प्राप्त करने के अधिकार का उल्लंघन है। भारत सरकार चंदा देने वाली कंपनियों और व्यक्तियों को उजागर करने को उनकी निजता के अधिकार पर हमला बताती है, जबकि यह योजना पूँजीपतियों के काले धन पर पर्दा डालने और उसमें से चंदे के रूप में अपना हिस्सा लेने का सिर्फ़ एक तरीक़ा है।

भारत सरकार द्वारा एक ओर चुनाव बांड के ज़रिए गुप्तता की बात कही जा रही है, लेकिन सच्चाई यह है कि भारतीय स्टेट बैंक और सरकारी एजंसियों को पता होता है कि किस व्यापारिक संस्था ने कितने पैसे के बांड ख़रीदे और किस पार्टी को दिए हैं। इसका मतलब है कि सत्ताधारी पार्टी के लिए यह जानकारी हासिल करना मुश्किल नहीं, लेकिन यह जानकारी विरोधी पार्टियों या जनता की पहुँच से बाहर होती है। यानी गुप्तता का प्रसंग सिर्फ़ आम जनता से गुप्तता का है।

(अगले पन्ने पर जारी)

(पिछले पन्ने से आगे)

सत्ता में बैठी राजनीतिक पार्टी तो कभी भी दानियों के विवरण माँग सकती है। इन चुनाव बांड की स्कीम के तहत कोई भी बड़ी कंपनी या पूँजीपति फ़र्ज़ी (शैल) कंपनी बनाकर पैसा उसके खाते में डाल सकती है, जहाँ से यह पैसा राजनीतिक पार्टी को दिया जा सकता है। यानी उन पर किसी तरह की कोई क़ानूनी रोक नहीं रहती।

अब तक चुनाव बांडों द्वारा 12,000 करोड़ रुपए राजनीतिक पार्टियों की झोली में डले हैं, सार्वजनिक हुई जानकारी के मुताबिक़ इनमें से ज़्यादातर चंदा भाजपा की झोली में गया है। पहले सिर्फ़ लोकसभा चुनाव से पहले ही बांडों द्वारा मोटे चंदे हथियाए जाते थे, लेकिन मोदी के निर्देशों के बाद अब विधानसभा चुनावों से पहले भी भाजपा ने बांडों के ज़रिए करोड़ों रुपए के चंदे इकट्ठे किए हैं। यहाँ तक कि भाजपा ने अपने राजनीतिक रुतबे का इस्तेमाल करते हुए, बीत चुकी तारीख़ के बांडों को भी कैश किया है। एक सूचना के अधिकार के तहत हासिल जानकारी से खुलासा हुआ है कि 2017-18 में किए गए चुनाव बांड की 95 प्रतिशत ख़रीद सत्ता पर काबिज भारतीय जनता पार्टी को मिली थी। सूचना अधिकार से मिली जानकारी के मुताबिक़ मार्च 2018 में चुनाव बांड खुलने के बाद बांड की बिक्री से 222 करोड़ रुपए राजनीतिक पार्टियों को हासिल हुए, जिनमें से 95 प्रतिशत सिर्फ़ भाजपा को मिले। अप्रैल में भी 114.90 करोड़ रुपए के बांड ख़रीदे गए थे। यह भी बात ध्यान देने वाली है कि 90 प्रतिशत बांड 1 करोड़ से अधिक मूल्य वाले ख़रीदे जाते हैं। भाजपा के रेल और वाणिज्य मंत्री पीयूष गोयल ने कहा कि बांड "छोटे" दान की सहूलत देते हैं। जबकि सच्चाई यह है कि बेचे गए कुल 12,313 बांडों में से सिर्फ़ 47 बांडों का मूल्य ही 1,000 रुपए था, जो कि सबसे कम मूल्य है, बाक़ी सारे बांड करोड़ों के मूल्य वाले थे। 1 मार्च 2018 और 10 अक्टूबर 2019 के बीच में बेचे गए सारे बांडों का 92 प्रतिशत 1 करोड़ रुपए की क़ीमत के थे। जिसका मतलब साफ़ है कि पार्टियों को दान देने वाले कोई साधारण लोग नहीं, बल्कि बड़े धन्नासेठ, पूँजीपति हैं। यानी इस बात का कोई भ्रम नहीं है कि पहले भारत के राजनीतिक-संवैधानिक ताने-बाने में सब ठीक था, लेकिन मोदी की भाजपा ने इन बांडों द्वारा पारदर्शिता का पाखंड करते हुए चंदों के रूप में सारे रिकॉर्ड तोड़ दिए हैं।

पूँजीपतियों की सुविधा के लिए चुनाव बांड के ज़रिए भाजपा ने कारपोरेट दान की मात्रा पर लगी हद को भी ख़त्म कर दिया है। चुनाव बांड योजना लागू होने से पहले हर राजनीतिक पार्टी को 20,000 रुपए से अधिक चंदा लेने के स्रोत के बारे में जानकारी देनी पड़ती थी। अब ऐसी जानकारी नहीं दी जाती, क्योंकि चुनाव बांडों के बारे में दानकर्ता और राजनीतिक पार्टी के नाम गुप्त रखे जाते हैं। पहले यह दान या चंदा पिछले तीन सालों में एक कंपनी की औसत विशुद्ध मुनाफ़े के 7.5 प्रतिशत तक सीमित थी, अब इसमें खुली छुट्टी दे दी गई है। दूसरा, भाजपा ने इस ज़रूरत को भी गैर-ज़रूरी कर दिया है कि कंपनी या व्यक्ति अपने टैक्स के विवरण में राजनीतिक दान के विवरण का खुलासा करे। अपने सालाना टैक्स खातों के बयानों में राजनीतिक दान की पूरी सूची देने की बजाए, अब कंपनी या पूँजीपति को सिर्फ़ एक कुल आँकड़ा बताना होता है। यानी कोई भी व्यक्ति, कंपनी या विशेष हित समूह अब टैक्स विभाग को एक भी रुपए का खुलासा किए बिना किसी भी राजनीतिक पार्टी को बेहिसाब रक़म दे सकता है और कोई भी – कोई वोटर, कोई नागरिक, कोई पत्रकार, और कोई भी जनपक्षीय नुमांइदा इसकी जाँच-पड़ताल तो दूर की बात, बल्कि जानकारी भी हासिल नहीं कर सकता।

ऊपर से सितम यह है कि चुनाव बांडों के ज़रिए जहाँ एक ओर पूँजीवादी कंपनियाँ अपने काले धन को ठिकाने लगा देती हैं, और सत्ताधारी पार्टियाँ उसमें से मोटी रक़में हासिल करती हैं। लेकिन चुनाव बांड जारी करने का सारा ख़र्चा आम जनता के सिर मड़ दिया जाता है। दान दी गई रक़म पर ना पूँजीपति और ना दान लेने वाली राजनीतिक पार्टी पर कोई टैक्स लगाया जाता है। इन चुनाव बांडों को ख़रीदकर राजनीतिक पार्टियों को देने वाले तथाकथित दानी टैक्स-मुक्त होते हैं, इसलिए जब कंपनियाँ और अमीर व्यक्ति अपनी पसंद की पार्टी को दान देते हैं, तो भारतीय ख़ज़ाने को कोई टैक्स नहीं मिलता है। इन चुनाव बांडों की छपाई और अन्य प्रक्रिया पर काफ़ी ख़र्चा आता है। भारतीय स्टेट बैंक ने मार्च 2018 से मई 2019 के दरमियान 10 किश्तों में 5,832 करोड़ रुपए के बांडों की बिक्री के लिए वित्त मंत्रालय को 3.24 करोड़ रुपए का हुआ ख़र्चा देने के लिए कहा है। लेकिन वित्त मंत्रालय का कहना था कि इसके लिए ना तो दानी और ना ही दान लेने वाला ख़र्चा देंगे, बल्कि यह ख़र्चा चुनाव बांडों को जारी करने वाली संस्था को ही देना पड़ेगा, जिसका मतलब है कि भारतीय स्टेट बैंक को। दूसरे शब्दों में कहें तो इन चुनाव बांडों की छपाई और अन्य ख़र्चों का बोझ जनता के सिर पर ही मड़ा जाता है। बांड योजना में यह व्यवस्था की गई थी कि अगर राजनीतिक पार्टियाँ हासिल हुए बांडों को 15 दिनों के अंदर-अंदर कैश नहीं करवाती तो इनकी रक़म भारत सरकार के संयुक्त फ़ंड में भेजी जाएगी। लेकिन भाजपा सरकार ने ग़ैर-उसूली तरीक़े से सत्ता के ज़ोर की बदौलत यह सारी रक़म प्रधानमंत्री राहत कोष में जमा करने का हुक्म दे दिया। इस तरह मोदी हुकूमत ने चुनाव बांडों की योजना के ज़रिए भाजपा को मालामाल किया और राजनीतिक चंदों में पारदर्शिता को यक़ीनी बनाने के नाम पर इसे पूरी तरह धुँधला कर दिया है।

हालाँकि भारत के राजनीतिक-आर्थिक-संवैधानिक ढाँचे के जन-विरोधी होने के बारे में कोई भ्रम नहीं होना चाहिए। जिसमें जनवाद और लोकमत की झूठी ओट में पूँजीपतियों की सेवा की जाती है और फिर यही पूँजीपति अपने हितों के मुताबिक़ राजनीतिक पार्टियों की झोलियाँ भरते हैं। मौजूदा चुनाव बांड योजना ने इस बात पर और मोहर लगा दी है, जो कि सीधा-सीधा बड़े धन्नासेठों-पूँजीपतियों या उनकी कंपनियों द्वारा लूटे गए काले धन को पूँजीपति पार्टियों को देकर सफ़ेद करने का ज़रिया बनते हैं। इसीलिए सत्ता में बैठी पार्टियाँ अवश्य ही उन पूँजीपतियों-धन्नासेठों की ही सेवा करती हैं, जिनसे मोटे चंदे लेती हैं। इसलिए पूँजीपतियों द्वारा मेहनतकशों की की गई लूट के धन से चलने वाली इन राजनीतिक पार्टियों से भारत की मेहनतकश जनता को कोई उम्मीद नहीं हो सकती, उन्हें अपने दम पर एक खरी क्रांतिकारी मज़दूर पार्टी का निर्माण करना होगा।

**– छिंदरपाल**

# मेहनतकशों को राहत देने की बजाय, हथियारों और साम्राज्यवादी युद्धों को पहल दे रहा है अमेरिकी साम्राज्यवाद

दुनिया के सबसे बड़े साम्राज्यवादी मुल्क़ संयुक्त राज्य अमेरिका (आगे सिर्फ़ अमेरिका) को पश्चिमपरस्त (मुख्य तौर पर ख़ुद अमेरिकी) मीडिया में दुनिया का मसीहा और सबसे पुराने लोकतंत्र के तौर पर पेश किया जाता है। परंतु ऐसी पेशकारी अमेरिकी साम्राज्यवाद के कुकर्मों पर पूरी दुनिया में इसके द्वारा फैलाई गई दहशत पर पर्दा डाल देती है। अमेरिका का 'शांति और लोकतंत्र' के झंडाबरदार होने का दावा आज दुनिया के सामने नंगा हो चुका है। इसकी ताज़ा मिसाल इज़रायली हुकूमत द्वारा फ़िलिस्तीनियों पर किए जा रहे जबर-जुल्म के दौरान भी देखने को मिली है। एक तरफ़ अमेरिका की ओर से गाज़ा पट्टी में युद्धबंदी की अपीलें करने का मीडिया स्टंट खेला जा रहा है और दूसरी तरफ़ इसकी ओर से इज़रायल को हथियार और दूसरा जंगी सामान भेजा जा रहा है। फ़िलिस्तीनी लोगों पर इज़रायली हुकूमत की ओर से थोपी गई जंग के बाद अमेरिकी हथियार कंपनियों के शेयरों की क़ीमत में तेज़ उछाल आया, बिल्कुल उसी तरह जैसे यूक्रेन युद्ध के समय देखा गया था। इस तथ्य ने अमेरिका की अर्थव्यवस्था में हथियार उद्योग की अहमीयत और मौजूदा पूँजीवादी ढाँचे के मानव विरोधी होने की सच्चाई को पूरी तरह उघाड़कर रख दिया है।

अमेरिका का फ़ौजी साजो-सामान के ऊपर ख़र्चा साल 2000 के बाद तेज़ी से बढ़ा है। साल 2000 में फ़ौजी साजो-सामान और हथियारों पर 320 अरब डॉलर का ख़र्चा किया गया था, जो 2010 में बढ़कर 730 अरब डॉलर और 2023 में यह 1.8 खरब डॉलर पहुँच गया है और यह पिछले साल बाइडेन सरकार द्वारा अनुमानित ख़र्च 800 अरब डॉलर से दुगना है। इस साल हथियारों और फ़ौजी साजो-सामान पर किए गए ख़र्च में से 821 अरब डॉलर तो सिर्फ़ नाटो (अमेरिकी साम्राज्यवादी चौधराहट वाला 31 देशों का फ़ौजी गुट) पर ख़र्च किए हैं। एक रिपोर्ट के अनुसार, पूरी दुनिया में 1947 के बाद लगभग 248 युद्ध अलग-अलग देशों में लड़े गए, जिनमें से 202 युद्धों में अमेरिका का सीधा हाथ है। इन युद्धों का सबसे ज़्यादा फ़ायदा अमेरिकी साम्राज्यवाद और हथियार बनाने वाली इसकी दैत्याकार कंपनियों को हुआ। पिछले साल अमेरिका की ब्राउन यूनिवर्सिटी में 'युद्ध का मूल्य' नामक प्रोजेक्ट के तहत एक रिपोर्ट आई, जिसमें बताया गया है कि 9/11 के विश्व व्यापार केंद्र पर हुए हमले के बाद अमेरिका का तथाकथित "आतंकवाद के ख़िलाफ़ युद्ध" के कारण 45 लाख से ज़्यादा निर्दोष लोग क़त्ल किए गए, जिनमें लगभग 38 लाख बच्चे और औरतें थीं। यह सब कुछ अरब क्षेत्र में अपनी फ़ौजी चौकी पक्की करने और वहाँ के तेल भंडार को लूटने के मक़सद से किया गया।

एक तरफ़ साम्राज्यवादी अमेरिका अपनी छिन रही विश्व चौधराहट के इस दौर

(अगले पन्ने पर जारी)

(पिछले पन्ने से आगे)

में और भी ज़्यादा खूंखार हो रहा है और दूसरी तरफ़ इसके मेहनतकश लोगों की रोज़मर्रा की मुश्किलें लगातार बढ़ती जा रही हैं। इस समय अमेरिका के लोग 1981 के बाद 43 सालों की सबसे ज़्यादा महँगाई की मार झेल रहे हैं। अमेरिका की आबादी में इसके नौजवान विद्यार्थियों के सिर क़र्ज़ का बोझ लगातार भारी होता जा रहा है। 2020 के राष्ट्रपति चुनावों के समय विद्यार्थी क़र्ज़ा बड़ा मुद्दा बनकर उभरा था, परंतु चुनाव जीतने के बाद बाइडेन सरकार ने विद्यार्थियों की क़र्ज़ माफ़ी से मुँह फेर लिया। इस समय अमेरिकी विद्यार्थियों के सिर पर 1.6 खरब डॉलर का भारी क़र्ज़ है। अमेरिका के लगभग 71% ग्रेजुएट विद्यार्थी क़र्ज़ की मार झेल रहे हैं। अमेरिका के सरकारी कॉलेज और यूनिवर्सिटियों में 2010 से 2020 तक फ़ीसों में 31.4 फ़ीसदी की बढ़ौतरी हुई है, जो कि अब भी बेरोक जारी है। औसतन हर विद्यार्थी को एक साल में 35,000 डॉलर अपनी पढ़ाई पर ख़र्च करने पड़ते हैं और महँगी पढ़ाई होने के कारण साल 2019-20 में 24.1 प्रतिशत विद्यार्थी कॉलेज छोड़ गए। कुछ नाममात्र की वज़ीफ़ा स्कीमें और वित्तीय सहायता विद्यार्थियों के बहुत छोटे-से हिस्से को ही मिल पाती हैं।

अगर आसान शब्दों में समझना हो तो हम यह कह सकते हैं कि अमेरिकी विद्यार्थियों के सिर क़र्ज़ भारत की कुल घरेलू पैदावार के आधे के बराबर है। एक तरफ़ विद्यार्थियों के सिर पर क़र्ज़ बढ़ा है और दूसरी ओर अमेरिकी हुकूमत बड़े पूँजीपतियों के क़र्ज़े माफ़ कर रही है। साल 2020-21 के दौरान पूँजीपतियों के 2.2 खरब डॉलर के क़र्ज़े माफ़ कर दिए गए। पिछले समय में अमेरिकी केंद्रीय बैंक की तरफ़ से बढ़ाई गई ब्याज़ दरों के कारण विद्यार्थियों की देनदारियाँ और बढ़ती जा रही हैं। कैलिफ़ोर्निया के एक विद्यार्थी वाल्टेज ने कहा, "यह क़र्ज़ मेरे लिए उम्रक़ैद है।" उसके ये शब्द बहुत-से अमेरिकी विद्यार्थियों की भावनाओं का इज़हार हैं, जिनकी सारी जवानी इस क़र्ज़ को उतारने में बीत जानी है।

इन विद्यार्थियों के सिर क़र्ज़ के भोझ से मुनाफ़ा कमाने के मक़सद से अमेरिका में बीएनपीएल कंपनियाँ बन गई हैं। अमेरिका में ये कंपनियाँ एक ग्राहक को दो हफ़्तों में चार ब्याज़ मुक्त किस्तों पर किसी भी वस्तु या सेवा के लिए भुगतान करने की छूट देती हैं। यह एक क्रेडिट कार्ड प्रबंध जैसी ही स्कीम है, परंतु है छोटे क़र्ज़ों के लिए। अमेरिका की कई कंपनियाँ यह सहूलियत देती है।

उदाहरण के तौर पर मान लीजिए कि आपके पास किसी कंपनी का क्रेडिट कार्ड है और आपने किसी स्टोर से 1000 डॉलर का सामान ख़रीदा और आपके पास इस समय एक भी रुपया नहीं है, तो कंपनी आपके इस पैसे का भुगतान कर देगी। आपको कंपनी को यह पैसा दो हफ़्तों के अंदर चार किस्तों में वापस करना पड़ेगा। शुरुआती लालच के प्रभाव में बहुत-से ग्राहक इस तरह के क़र्ज़ के जाल में फँस जाते हैं, जिसमें से निकलना मुश्किल हो जाता है। अमेरिका की लगभग आदि से ज़्यादा आबादी कोई भी चीज़ ख़रीदने के लिए इन्हीं सेवाओ को इस्तेमाल करती है और ज़्यादातर इसका इस्तेमाल अमेरिकी नौजवान और विद्यार्थी करते हैं। लॉकडाउन के बाद इन कंपनियों ने अपने कारोबार का काफ़ी विस्तार किया है। यानी जैसे ही लॉकडाउन की बर्बादी, बेरोज़गारी, महँगाई के कारण लोगों का रोज़गार छिना, विद्यार्थियों के सिर बोझ बढ़ा, वैसे ही ये कंपनियाँ इसमें से मुनाफ़ा ढूँढ़ने के लिए छोटी मियाद के क़र्ज़ लोगों को देने लगीं।

### अमेरिका में बढ़ रही ग़रीबी, बेरोज़गारी और बेघर लोगों की गिनती

रोटी, कपड़ा, मकान, शिक्षा और सेहत सहूलियतें हर मनुष्य के लिए बुनियादी ज़रूरतें हैं। परंतु आज दुनिया के सबसे ताक़तवर देश साम्राज्यवादी अमेरिका के अंदर यहाँ की मेहनतकश आबादी का निचला हिस्सा लगातार इन बुनियादी सुविधाओं के लिए भी जूझता नज़र आ रहा है। आम अमेरिकियों की आर्थिक हालात बहुत अच्छी नहीं है। 43% लोग मानते हैं कि वे अगले आधे साल तक क़र्ज़दार हो जाएँगे। 1981 के बाद अमेरिका में महँगाई दर पिछले 43 सालों में सबसे उच्चतम शिखर पर है। इस महँगाई ने लोगों को बुनियादी सुविधाओं से भी वंचित कर दिया है। एक रिपोर्ट के मुताबिक़ 40% अमेरिकियों का मानना है कि उनके पास जीवन निर्वाह के लिए कोई बचत नहीं है और लगभग 48 प्रतिशत यह मानते हैं कि इस साल के अंत तक उनके पास बचत खाते में कुछ भी नहीं बचेगा। अमेरिका में बेरोज़गारों की गिनती ही लगभग 60 लाख से ज़्यादा है। इसके अलावा रोज़गार हासिल आबादी के बड़े हिस्से का वेतन भी ज़रूरत के मुताबिक़ काफ़ी कम है और लंबे समय में इनमें कोई असल बढ़ौतरी दर्ज नहीं हुई है।

अमेरिका में बेघर लोगों की गिनती भी लगातार बढ़ती जा रही है। अकेले न्यूयॉर्क शहर में ही लगभग 1 लाख से भी ज़्यादा बेघर लोग सड़कों पर रातें गुज़ार रहे हैं। अगर पूरे अमेरिका की बात की जाए, तो लगभग 5 लाख 82 हज़ार बेघर लोग सड़कों पर भटक

(पन्ना 15 पर जारी)

# मनरेगा योजना को ख़त्म करके ग्रामीण मज़दूरों से नाममात्र का रोज़गार भी छीन रही है मोदी हुकूमत

(पन्ना 16 पर जारी)

दूसरा नेटवर्क की भी समस्या है। वे काम की जगहें जहाँ ये औरतें काम करती हैं, कई बार घने जंगल होते हैं, जहाँ नेटवर्क एक बड़ा मुद्दा होता है। इसके कारण, कर्मचारी काम कर रहे हैं लेकिन उनकी हाज़िरी सही तरीक़े से नहीं लगती। कई बार ऐसा होता है कि ऐप जमा किए गए डाटा को नहीं दर्शाती। फ़िलहाल, सरकार मनरेगा मज़दूरों के लिए इस्तेमाल की जा रही खाता-आधारित भुगतान प्रणाली पहले ही क़र्ज़े में है। अब इस ऐप-आधारित प्रणाली के ज़रिए कर्मचारियों को भुगतान ना करने का एक और तरीक़ा ढूँढ़ लिया गया है।

### आधार-आधारित भुगतान प्रणाली कैसे ग़लत है?

सरकारी आँकड़ों के अनुसार, मनरेगा के वर्तमान मज़दूर जिनकी संख्या 14.41 करोड़ है, जिनमें से 11.60 करोड़ मनरेगा मज़दूर आधार-आधारित भुगतान प्रणाली के मापदंडों को पूरा करते हैं। एक अध्ययन के अनुसार आसाम जैसे राज्य में 25 प्रतिशत ए.बी.पी.एस. योग्य मज़दूर थे, महाराष्ट्र में 26 प्रतिशत, गुजरात में 33 प्रतिशत, बिहार में 46 प्रतिशत, झारखंड में 53 प्रतिशत, उत्तर प्रदेश में 55 प्रतिशत, मध्य प्रदेश में 58 प्रतिशत और कर्नाटक में 60 प्रतिशत। इससे ही अंदाज़ा लगा सकते हैं कि एक बड़ा हिस्सा दस्तावेज़ों को पूरा करना, दफ़्तरों के चक्कर काटते हुए परेशान होता है। और आधार को जॉब कार्ड से जोड़ना फिर बैंक खाते से जोड़ना मेहनतकश जनता के लिए बोझ है।

आबादी के पक्ष से मज़दूरों का एक हिस्सा ऐसा है जिनके हाथों के निशान मिट चुके होते हैं, काम कर-करके हाथ घिस जाते हैं, जिसके कारण उनके आधार कार्ड मशीन पर नहीं आते। इसके अलावा बड़ी संख्या आदिवासी लोगों की भी ऐसी ही समस्या में से गुज़रती है। मतलब बहुत बड़ी आबादी चाहके भी आधार कार्ड नहीं बनवा सकती। ये सब जानते हुए भी सिर्फ़ आधार कार्ड से ना जुड़े होने के कारण मनरेगा में काम नहीं मिलेगा। इस सबको बहाना बनाकर ही अलग-अलग राज्य सरकारों ने साल 2023 में लगभग 5 करोड़ मज़दूरों के कार्ड खारिज़ कर दिए, जो कि सरासर धक्केशाही है।

मोदी हुकूमत जनता को मजबूर करके सबके आधार कार्ड बनवाने में लगी हुई है, ताकि सभी लोगों पर निगरानी रखनी आसान हो सके। इसके कारण विभिन्न सेवाओं के लिए आधार कार्ड ज़रूरी कर दिया जाता है और मजबूरी में लोगों को आधार कार्ड बनवाना पड़ता है। कुछ समय पहले एक अख़बार ने खुलासा किया था कि आधार कार्ड का डाटा 500 रुपए में कोई भी ख़रीद सकता है यानी कि आपका अपना कुछ भी नहीं रहा, सरकार की आप पर हर पल नज़र है। भाजपा सरकार जब आधार कार्ड की योजना लेकर आई थी, तो इस बारे में बहुत बड़े दावे किए गए थे। जन कल्याण की सुविधाओं की पहुँच लोगों तक बढ़ाने से लेकर भ्रष्टाचार रोकने तक के बयान दिए गए थे। आज आधार कार्ड को लागू हुए लगभग 10 साल हो चुके हैं, लेकिन असलीयत सरकारों की बयानबाज़ी से बिल्कुल उलट है। सत्ता में आने से पहले जो मोदी और भाजपा मंडली आधार कार्ड के ख़िलाफ़ बोलती थी, सत्ता में आने के बाद पूरे ज़ोर-शोर से इसे हर क्षेत्र में ज़रूरी कर रही है। शिक्षा, स्वास्थ्य, बुढ़ापा पेंशन, सरकारी राशन, मनरेगा आदि लगभग हर योजना में आधार कार्ड का होना ज़रूरी कर दिया है।

भाजपा सरकार जब से भारत की राजसत्ता पर विराजमान हुई है, लगातार सार्वजनिक सुविधाओं पर कटौती लगा रही है। भारत के इजारेदार पूँजीवाद का एक हिस्सा भाजपा को सत्ता में लेकर ही इस कारण आया था कि पूँजीपतियों के कम हो रहे मुनाफ़ों को बढ़ाया जा सके। इसी तरह सार्वजनिक सुविधाएँ जो लोगों को पहले से मिल रही हैं, उन्हें तकनीकी तरीक़ों से, बजट में कटौती करके, अन्य बहानों के ज़रिए बंद करने के राह पर भाजपा चल रही है, ताकि सार्वजनिक सुविधाओं के लिए दी जाने वाली राशि को भी पूँजीपतियों की सेवा में लगाया जा सके।

देश में एक ओर नौकरियों की, बेरोज़गारी की भयंकर समस्या है, जबकि दूसरी ओर मनरेगा को लागू करने में सरकार की कोई रुचि ही नहीं है। मनरेगा औरतों के लिए रोज़गार मुहैया कराने के नज़रिए से भी जनता के लिए महत्वपूर्ण है, जो इसके कुल रोज़गार में 50 प्रतिशत से अधिक बनती है। इसके साथ ही मनरेगा के ज़रिए लगभग 40 प्रतिशत अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति को दिया जाता है। कोरोना लॉकडाउन के बाद करोड़ों लोग भुखमरी का शिकार हुए, करोड़ों लोगों का रोज़गार छिन गया। ऐसे समय में लोगों के लिए रोज़गार मुहैया करवाना सरकारों का फ़र्ज़ है। मेहनतकश जनता को मनरेगा के घेरे को विशाल करने, शहरी मज़दूरों पर भी लागू करवाने, और इसके बजट को बढ़ाने और इसे सही तरीक़े से लागू करवाने के लिए संघर्ष करना पड़ेगा।

**– रविंदर कौर**

# फ़िलिस्तीन के मुक्ति संघर्ष के समर्थन में पूरी दुनिया के लोग

इज़रायल द्वारा फ़िलिस्तीनियों का क़त्लेआम किया जा रहा है। इज़रायल के फ़िलिस्तीन पर हमले के पहले तीस दिनों में ही हवाई हमलों और गाज़ा पट्टी में दाख़िल होकर 11 हज़ार से ज़्यादा फ़िलिस्तीनियों का क़त्लेआम किया गया है जिनमें 45 सौ से ज़्यादा बच्चे हैं। इन 30 दिनों में 27 हज़ार से ज़्यादा फ़िलिस्तीनी ज़ख़्मी हुए हैं, जिनमें से ज़्यादातर को इलाज की सुविधा नहीं मिल रही। इज़रायल द्वारा मचाई गई तबाही के कारण गाज़ा की कुल 23 लाख आबादी में से 70 फ़ीसदी आबादी प्रवास कर चुकी है। गाज़ा पट्टी की ऐसी कोई जगह नहीं बची, जहाँ इज़रायल द्वारा बम ना फेंका गया हो। हवाई हमले द्वारा तबाही मचाने के बाद अब इज़रायली सेना गाज़ा में दाख़िल हो चुकी है। अस्पतालों की घेराबंदी कर हमले कर रही है, जिस कारण नवजात बच्चे अपनी जान गँवा रहे हैं। गाज़ा पट्टी में पानी, खाने वाली वस्तुओं, तेल आदि की बड़ी किल्लत है। दवाइयों की कमी के कारण बड़े अस्पतालों ने ज़ख़्मियों को भर्ती करना बंद कर दिया है।

इज़रायली शासकों द्वारा फ़िलिस्तीनियों पर किए जा रहे दमन ने दुनिया-भर के जनमानस में भारी रोष पैदा कर दिया है। इस जनरोष के नतीजे के तौर पर बीते एक महीने से दुनिया-भर में इज़रायली हमलावरों के विरुद्ध लोगों द्वारा रोष प्रदर्शन किए जा रहे हैं। ग़ौरतलब है कि सबसे ज़्यादा रोष प्रदर्शन उन देशों में हो रहे हैं, जिन देशों की हुकूमतें इज़राइल का सीधा साथ दे रही हैं। इन रोष प्रदर्शनों में दुनिया-भर के मेहनतकश लोग बढ़-चढ़कर हिस्सेदारी कर रहे हैं। दूसरा सबसे बड़ा हिस्सा छात्रों और प्रगतिशील संगठनों का है। हालाँकि ये रोष प्रदर्शन बीते 1 महीने से हो रहे हैं, पर नवंबर में हुए रोष प्रदर्शनों का संक्षिप्त विवरण देने का प्रयत्न करेंगे, ताकि यह स्पष्ट किया जा सके कि दुनिया-भर की मेहनतकश जनता फ़िलिस्तीन की राष्ट्रीय मुक्ति के समर्थन में खड़ी है।

बीती 4 नवंबर को दुनिया-भर में 'फ़िलिस्तीन के साथ राष्ट्रीय एकजुटता दिवस' मनाया गया। इस अवसर पर इज़राइलियों द्वारा किए जा रहे क़त्लेआम के विरुद्ध और हमले तुरंत बंद किए जाने की माँग और फ़िलिस्तीन की राष्ट्रीय मुक्ति के समर्थन में दुनिया के 300 से ज़्यादा बड़े शहरों में बड़ी गिनती में लोग इकट्ठा हुए।

**संयुक्त राज्य अमेरिका** की राजधानी वाशिंगटन डीसी में 3 लाख से ज़्यादा लोग फ़िलिस्तीनियों के समर्थन में इकट्ठा हुए और साथ ही संयुक्त राज्य अमेरिका की हुकूमत के विरुद्ध भी रोष प्रदर्शन किया और "बाइडेन! तू

छुप नहीं सकता!" जैसे नारे लगाए गए। संयुक्त राज्य अमेरिका के कई विश्वविद्यालयों में छात्रों द्वारा फ़िलिस्तीन के समर्थन में प्रदर्शन हुए हैं। विशेषज्ञ कह रहे हैं कि आख़िरी बार 2003 में (जब अमेरिका ने इराक़ पर हमला किया था) इतने बड़े प्रदर्शन हुए थे।

**कनाडा** में किंग्सटन, ओटावा, टोरंटो विनिपेग समेत 30 के करीब शहरों में फ़िलिस्तीन को आज़ाद करो के नारे बड़े-बड़े प्रदर्शनों में गूँजे।

फ़िलिस्तीन के पड़ोसी देश **मिस्र** में ट्रेड यूनियनों, फ़िलिस्तीन समर्थक नागरिक समाज कमेटियों द्वारा बड़ा रोष प्रदर्शन किया गया। और गाज़ा के एकमात्र रफ़ाह मार्ग को पूरी तरह खोलने की माँग की गई।

**ट्यूनीशिया** की राजधानी में ट्रेड यूनियनों और प्रगतिशील संगठनों द्वारा फ़िलिस्तीन की राष्ट्रीय मुक्ति के समर्थन में बड़ा रोष प्रदर्शन किया गया। जिसमें इज़राइल के साथ किसी भी तरह के संबंध रखने पर प्रतिबंध लगाने की माँग की गई। रोष प्रदर्शनों के दबाव के कारण ट्यूनीशिया की हुकूमत को इस तरफ़ कुछ फ़ैसले तुरंत लेने भी पड़े हैं।

**मोरक्को** में भी कई शहरों में इज़रायल और इज़रायल के साथ खड़ी मोरक्को की हुकूमत के विरुद्ध आम लोगों द्वारा रोष प्रदर्शन किए गए।

**तुर्की** में भी बड़े प्रदर्शन हुए। ऐसे ही एक बड़े प्रदर्शन के दौरान लोगों ने अमेरिका के सैन्य अड्डे पर हमला बोल दिया।

**मध्य पूर्व** के कई देशों में बड़े रोष प्रदर्शन नवंबर के पहले हफ़्ते में देखने को मिले हैं।

**अफ़्रीका** के देशों – घाना, सेनेगल, दक्षिण अफ़्रीका आदि देशों में तीखे रोष प्रदर्शन हुए। 4 नवंबर को ही **एशिया**, **लातिनी अमेरिका** के देशों में भी इसी तरह के बड़े रोष प्रदर्शन हुए।

**यूरोप** के भी हर देश में 4 नवंबर को रोष प्रदर्शन हुए। **इटली** में ट्रेड यूनियनों और जनपक्षीय संगठनों के आह्वान पर 10 हज़ार से ज़्यादा लोग राजधानी रोम में इकट्ठे हुए और फ़िलिस्तीन की राष्ट्रीय मुक्ति के पक्ष में खड़े होते हुए इटली की हुकूमत की इज़रायल के साथ सैन्य भागीदारी ख़त्म करने की माँग की। इसके अलावा मिलान में भी 10 हज़ार से ज़्यादा लोग इकट्ठे हुए। इटली के शहर नेपल्स में छात्रों का रोष इतना तीखा हो गया कि उन्होंने कुछ समय के लिए एक इमारत पर ही कब्ज़ा कर लिया।

**फ़्रांस** में 100 से ज़्यादा ट्रेड यूनियनों और जन संगठनों ने विभिन्न शहरों में प्रदर्शन किए। राजधानी पेरिस में 60 हज़ार के करीब लोग इकट्ठा हुए।

**जर्मनी** में भी राजधानी बर्लिन समेत कई शहरों में इज़राइल और उसकी जोड़ीदार जर्मनी की हुकूमत के विरुद्ध लोगों का रोष फूट पड़ा।

**ब्रिटेन** में भी राजधानी लंदन समेत देश के कई शहरों में इसी दिन बड़े रोष प्रदर्शन हुए।

नवंबर महीने में ही 4 तारीख़ के बाद लगातार रोष प्रदर्शन हुए हैं। इसके अलावा 11 नवंबर को एक बार फिर दुनिया-भर में लगभग हर देश में बड़े रोष प्रदर्शन हुए। 11 नवंबर को हुए रोष प्रदर्शनों में शामिल लोगों की गिनती 4 नवंबर से कहीं ज़्यादा थी।

इन रोष प्रदर्शनों में इज़रायल द्वारा गाज़ा में किए जा रहे मानवता के क़त्ल के विरुद्ध और अपने देश की हुकूमतों जो इज़राइल का साथ दे रही है, के विरुद्ध लोगों में भारी रोष देखने को मिला।

वैसे तो ये प्रदर्शन दुनिया-भर में ही हुए, पर सबसे बड़ा रोष प्रदर्शन यू.के. की राजधानी लंदन में हुआ। इस रोष प्रदर्शन को 'फ़िलिस्तीन की मुक्ति के लिए राष्ट्रीय मार्च' का नाम दिया गया। इस मार्च में शामिल होने के लिए 5 लाख से ज़्यादा लोग सड़कों पर उतरे। इस प्रदर्शन में देश के मेहनतकश लोग, छात्र, कर्मचारी और औरतें बड़ी संख्या में शामिल थे। लोगों ने यू.के. की हुकूमत की इज़रायल के साथ भागीदारी का जमकर विरोध किया और हुकूमत का नेतृत्व कर रहे ऋषि सुनक के विरुद्ध नारे लगाए। वैसे तो इज़रायल का समर्थन करने वाले दक्षिणपंथी ग्रुप भी इसी दिन जानबूझकर उतरे, पर उनकी गिनती एक हज़ार से ज़्यादा नहीं थी। यू.के. की हुकूमत ने इस मार्च की भर्त्सना के लिए बयानबाजी करके पूरा ज़ोर लगाया।

यू.के. की हुकूमत की गृह सचिव सुएला ब्रेवरमैन ने इस मार्च को "नफ़रत का मार्च" नाम दे दिया। इन बयानों ने लोगों में और रोष भर दिया । इसके बाद यू.के. की हुकूमत और दबाव में आ गई और जन दबाव के कारण यू.के. की हुकूमत को गृह सचिव सुएला ब्रेवरमैन को पद से हटाना पड़ा।

दुनिया-भर में इज़रायल की धक्केशाही के विरुद्ध हो रहे रोष प्रदर्शनों ने साफ़ कर दिया है कि दुनिया की बहुसंख्यक मेहनतकश आबादी फ़िलिस्तीन के समर्थन में खड़ी है और उसकी राष्ट्रीय मुक्ति की समर्थक है। दूसरी तरफ़ दक्षिणपंथी ताक़तें इज़रायल के साथ खड़ी हैं। पर उनको इस मसले पर लोगों का समर्थन प्राप्त नहीं है। दूसरी तरफ़ इज़राइल का समर्थन करने वाली हुकूमतें अपने देश के लोगों के रोष का सामना कर रही हैं। कई देशों की हुकूमतों को इज़राइल के बारे में अपनी पहुँच जनाक्रोश के कारण बदलनी भी पड़ी है।

**– पावेल जलालआणा**

## मेहनतकशों को राहत देने...

**(पन्ना 14 से आगे)**

रहे हैं। 2000 से 2010 तक लगभग 36 लाख लोगों को घर ख़ाली करने के नोटिस जारी हुए हैं। एक अमेरिकी अख़बार के मुताबिक़ 2010 के बाद बेघर लोगों की गिनती में लगभग 39 प्रतिशत की बढ़ौतरी हुई है।

आज पूरी दुनिया के पूँजीवादी देश कम या ज़्यादा अपने-अपने पूँजीपतियों को रियायतें बढ़ाते जा रहे हैं और फ़ौजी साजो-सामान पर ख़र्च बढ़ा रहे हैं, जब कि आम लोगों पर महँगाई, ज़्यादा टैक्स आदि का बोझ डाल रहे हैं। संसार के सबसे बड़े साम्राज्यवादी अमेरिका की हालत भी ऐसी ही है। एक तरफ़ तो अमेरिका युद्ध थोपने के लिए फ़ौजी साजो-सामान पर हर साल खरबों डॉलर ख़र्च कर रहा है, वहीं दूसरी तरफ़ अमेरिका की 80 फ़ीसदी आबादी बुनियादी ज़रूरतों को पूरा करने के जंजाल में ही फँसी हुई है। बाहर युद्धों में पैसा झोंकना और अंदर अपनी मेहनतकश जनता को उनके बुनियादी अधिकारों से वंचित करना, इस रोग-ग्रस्त साम्राज्यवादी देश की आज की कड़वी सच्चाई है।

**– पुष्पिंदर**

# बंगलादेश में कपड़ा मज़दूरों की हड़ताल

पिछले कुछ समय में विश्व स्तर पर हो रही घटनाएँ उन पूँजीवादी बुद्धिजीवियों का मुँह चिढ़ाती नज़र आती हैं, जिन्होंने किसी समय घोषणा कर दी थी कि अर्थव्यवस्था में आधुनिक तब्दीलियों के कारण अब मज़दूरों के वर्ग संघर्ष होने का कोई आधार नहीं रहा और इतिहास का अंत हो चुका है। पिछले दशक के अंत और ख़ासतौर पर कोरोना लॉकडाऊन काल के बाद दुनिया के कई देशों, विकसित पूँजीवादी देशों समेत, में मज़दूर वर्ग अपने अधिकारों के लिए फिर से संघर्षों के अखाड़े में उतरा है, जिनमें से सबसे प्रमुख उदाहरण फ़्रांस और ब्रिटेन के मज़दूरों के संघर्षों का है।

इसी लड़ी में 31 अक्टूबर से बंगलादेश के कपड़ा उद्योग के मज़दूरों की हड़तालें और विरोध प्रदर्शन जुड़ चुके हैं, जो यह रिपोर्ट लिखे जाने तक जारी हैं। इन हड़तालों-विरोध प्रदर्शनों का कारण इन मज़दूरों, जिनमें बड़ी गिनती में औरतें हैं, के बेहद कम वेतन हैं। इन मज़दूरों की माँग महीने की न्यूनतम मज़दूरी 8300 टका (75 अमेरिकी डॉलर) जो कि भारत के 6270 रुपए के बराबर है, को बढ़ाकर 20,393 टका करने की है, जो 15000 रुपए बनता है। पिछले 5 सालों से इनकी कोई वेतन वृद्धि नहीं हुई है। कुछ समय पहले ही कपड़ा उद्योग के मज़दूरों की ट्रेड यूनियनों की बदौलत बंगलादेश की सरकार ने इनकी तनख़्वाह में बढ़ौतरी की बात की थी, जो कि बेहद कम थी और अब भी शेख हसीना

सरकार न्यूनतम मज़दूरी को 12000 टके तक ही बढ़ाने को राजी हुई है। इस हड़ताल के दौरान पुलिस द्वारा मज़दूरों को बर्बर तरीक़े से मारा-पीटा जा रहा है और शेख हसीना साथ ही यह बयान जारी कर रही है कि अगर मज़दूर सरकार की ओर से ऐलान की गई मज़दूरी पर काम करने को तैयार नहीं, तो वे अपने-अपने गाँवों को लौट जाएँ। सरकार की लंबे समय से मज़दूरों के प्रति चली आ रही बेरुख़ी और पूँजीवादी लूट से दुखी मज़दूरों का रोष ढाके (बंगलादेश की राजधानी और कपड़ा उद्योग का केंद्र) में कई जगह पर काफ़ी तीखा रूप भी धारण कर चुका है, जहाँ मज़दूरों की ओर से कई फ़ैक्टरियों में आग भी लगाई गई है। कुछ सज्जन इस सबके लिए मज़दूरों को दोष दे रहे हैं और उनकी बुरी हालतों और इसके लिए ज़िम्मेदार पूँजीपतियों और उनकी चाकर सरकारों की जन-विरोधी नीतियाँ से बिल्कुल ही नज़रें घुमा रहे हैं।

एक तरफ़ पिछले लंबे समय से मज़दूरी का ना बढ़ाना और महँगाई में बेहिसाब बढ़ौतरी के कारण कपड़ा उद्योग के मज़दूरों की यह हड़ताल बंगलादेश के हुक्मरानों के गले की हड्डी बन गई है। प्रधानमंत्री शेख हसीना के लिए ख़ासतौर पर एक बड़ी चुनौती है, जिसने 2009 से देश पर लोहे के हाथों से राज किया है। आर्थिक तौर पर कपड़ा उद्योग का बंगलादेश के लिए काफ़ी अहम स्थान है। बंगलादेश विश्व स्तर पर कपड़ा निर्यात में चीन के बाद दूसरे नंबर पर आता है। यहाँ कपड़ा उद्योग की 3500 फ़ैक्टरियाँ हैं, जिनमें से सबसे ज़्यादा बंगलादेश की राजधानी ढाका में हैं। बंगलादेश की तरफ़ से सालाना किए जा रहे निर्यात का 85% (55 अरब अमेरिकी डॉलर) हिस्सा कपड़ा उद्योग से आता है। बंगलादेश की कुल घरेलू पैदावार 446.35 अरब अमेरिकी डॉलर है। कपड़ा उद्योग का इसमें हिस्सा 32.5 प्रतिशत है। इस उद्योग में 40 लाख मज़दूर काम करते हैं, जिसमें 58% से ज़्यादा औरतें हैं। ये मज़दूर दुनिया-भर की कई बड़ी कंपनियाँ, जैसे कि एच-एंड-एम, ज़ारा, नाइकी, एडीडास, लेविस, टारगेट आदि के लिए कपड़ा बनाते हैं। देसी पूँजीपतियों, जिनमें बंगलादेश के कई प्रमुख मंत्री आते हैं, का भी इस उद्योग में काफ़ी निवेश है। इस हड़ताल से देसी के साथ-साथ विदेशी पूँजी के मुनाफ़े का भी काफ़ी नुक़सान हुआ है और यही नुक़सान रोकने के लिए शेख हसीना सरकार एड़ी-चोटी का ज़ोर लगा रही है।

कपड़ा उद्योग में काम करने वाले मज़दूर, जो इन पूँजीपतियों को हर साल अरबों-खरबों का मुनाफ़ा कमा कर देते हैं, ख़ुद नर्क जैसे हालातों में जी रहे हैं। परंतु शेख हसीना सरकार मज़दूरों के वेतन बढ़ाने की जगह सरेआम पूँजीपतियों का पक्ष लेते हुए मज़दूरों पर दमन-उत्पीड़न का रास्ता अख़्तियार कर रही है। प्रधानमंत्री ने मज़दूरों की माँगों को मानने से कोरा इनकार कर दिया है और कहा है कि इन हड़तालों से नौकरियों का नुक़सान हो रहा है। शेख हसीना सरकार की तरफ़ से मज़दूरों की ऐसी किसी भी हड़ताल आदि को दबाने के लिए पूरी कोशिश करने के बावजूद बड़ी गिनती में (पुलिस के मुताबिक़ यह गिनती 17 हज़ार है, जबकि स्थानीय यूनियनों का कहना है कि 1 लाख या इससे भी ज़्यादा मज़दूर हड़ताल पर हैं) पूँजीपतियों और सरकार के विरुद्ध बंगलादेश के मज़दूरों की ओर से ऐसी शमूलियत करना बंगलादेशी हुक्मरानों के विरुद्ध जनता के रोष का सराहनीय क़दम है।

**– नेहा**

# मनरेगा योजना को ख़त्म करके ग्रामीण मज़दूरों से नाममात्र का रोज़गार भी छीन रही है मोदी हुकूमत

भाजपा सरकार ग्रामीण क्षेत्र के मज़दूरों के लिए साल के 100 दिन काम की गारंटी वाली योजना मनरेगा (महात्मा गाँधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोज़गार गारंटी एक्ट) को तरह-तरह के हथकंडों से ख़त्म करने की तैयारी में है। साल 2020-21 के बजट 1,11,500 करोड़ रुपए के मुक़ाबले साल 2023-24 का बजट 60,000 करोड़ रुपए ही है। दो सालों में ही बजट में करीब 48 प्रतिशत कटौती कर दी गई है। इस साल के बजट की राशि का 93 प्रतिशत पहले छह महीनों में ही ख़र्च हो गया है। इसी साल भाजपा मनरेगा से संबंधित दो संशोधन लेकर आई है। पहला कि मनरेगा मज़दूरों की हाज़िरी एन.एम.एम.एस. (नैशनल मोबाइल मोनिटरिंग सिस्टम) के ज़रिए लगेगी। यह एक मोबाइल ऐप है, जिसमें काम की जगह पर सुबह 9 से 11 के बीच ऑनलाइन हाज़िरी लगती है।

दूसरा कि सरकार ने मनरेगा में एक आधार आधारित भुगतान प्रणाली (एबीपीएस) लागू कर दी है। इससे पहले, मनरेगा मज़दूरों को दो तरीक़ों से भुगतान किया जाता था – एक खाता-आधारित प्रणाली और दूसरी आधार-आधारित प्रणाली। अब सरकार ने सभी के लिए आधार-आधारित भुगतान प्रणाली ज़रूरी कर दी है। इस प्रणाली में, कर्मचारियों को अपने जॉब कार्डों को अपने आधार कार्ड और बैंक खाते से जोड़ना पड़ेगा और उन्हें नैशनल पेमेंट कारपोरेशन ऑफ़ इंडिया से भी जोड़ना होगा।

### मनरेगा की ऑनलाइन हाज़िरी कैसे ग़लत है?

सरकार ने 'राष्ट्रीय मोबाइल निगरानी सॉफ़्टवेयर' के ज़रिए मनरेगा की ऑनलाइन हाज़िरी प्रणाली को 20 से अधिक कर्मचारियों वाली कार्य साइटों पर लागू किया है। जबकि पहले मनरेगा काम वाली जगहों पर काग़ज़ी मसट्रोलों पर हाज़िरी लगती थी। जो रोज़ाना हाज़िरी के इलावा हर रोज़ पूरे किए गए काम को रिकॉर्ड करता था। अब ऑनलाइन हाज़िरी में काम का विवरण नहीं रखा जाएगा, जो कि मनरेगा एक्ट का सीधा-सीधा उल्लंघन है, जिसके अनुसार मज़दूरों के हर काम का रिकॉर्ड और विवरण सार्वजनिक निरीक्षण के लिए मुहैया होने चाहिए। अब इस ऑनलाइन हाज़िरी के कारण मनरेगा मज़दूरों/सहायकों को हाज़िरी लगाने के लिए स्मार्टफ़ोन की ज़रूरत होती है। भले, ग़रीब घरों की बहुत सारी औरतें, जिनमें से एक बड़ा हिस्सा एस.सी./एस.टी. परिवारों से संबंधित है, उनके पास स्मार्टफ़ोन की पहुँच नहीं है। ऊपर से ऐप को अंग्रेज़ी में बनाया गया है। सभी संदेश, निर्देश आदि सिर्फ़ अंग्रेज़ी में ही उपलब्ध हैं, जिससे ग्रामीण औरत मज़दूरों के लिए इनका इस्तेमाल और भी पहुँच से बाहर हो जाता है। इसी तरह सरकार अप्रत्यक्ष तरीक़े से मनरेगा में मज़दूरों की भागीदारी कम कर रही है।

(पन्ना 14 पर जारी)

मालिक, प्रकाशक और मुद्रक रविंदर कौर द्वारा न्यू दशमेश प्रिंटर्ज, पता – 178-179, रणजीत नगर, जलंधर, पंजाब–144001 से मुद्रित और
उन्हीं द्वारा म.नं. 212, वी.पी.ओ. – पख्खोवाल, तहसील – रायकोट, ज़िला – लुधियाणा, पंजाब – 141108 से प्रकाशित। संपादक – लखविंदर सिंह